Time to Remember... Place to Repay

pitrapaksha

GAYA

तर्पण

२०१३

पितृपक्ष मेला, गया (बिहार)

जिला प्रशासन गया की प्रस्तुति

बुद्धं शरणं गच्छामी ! धम्मं शरणं गच्छामी !! संघं शरणं गच्छामी !!!

पितृपक्ष मेला-2013 के अवसर पर विभिन्न स्थानों से आये तीर्थयात्रियों/पर्यटकों का बुद्ध की ज्ञानस्थली, विश्व धरोहर स्थल बोधगया में

हार्दिक स्वागत है।

बोधगया मंदिर प्रबन्धकारिणी समिति

महाबोधि मंदिर एवं परिसर पुरे विश्व में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल माना जाता है। यही वह स्थल है जहाँ छठी शताब्दी ई. पू. गौतम सिद्धार्थ को सर्वोच्च सम्बोधि-प्राप्ति हुई और वे बुद्ध कहलाए।

इस पवित्रतम तीर्थस्थल की उन्नति, सुरक्षा एवं इसके संरक्षण तथा सौंदर्यीकरण के लिए आपका सहयोग अपेक्षित है। इस महाबोधि स्थल पर आप का शुभागमन चिरस्मरणीय हो - ऐसी हमारी शुभकामना है।

भवतु सब्ब मंगलं।

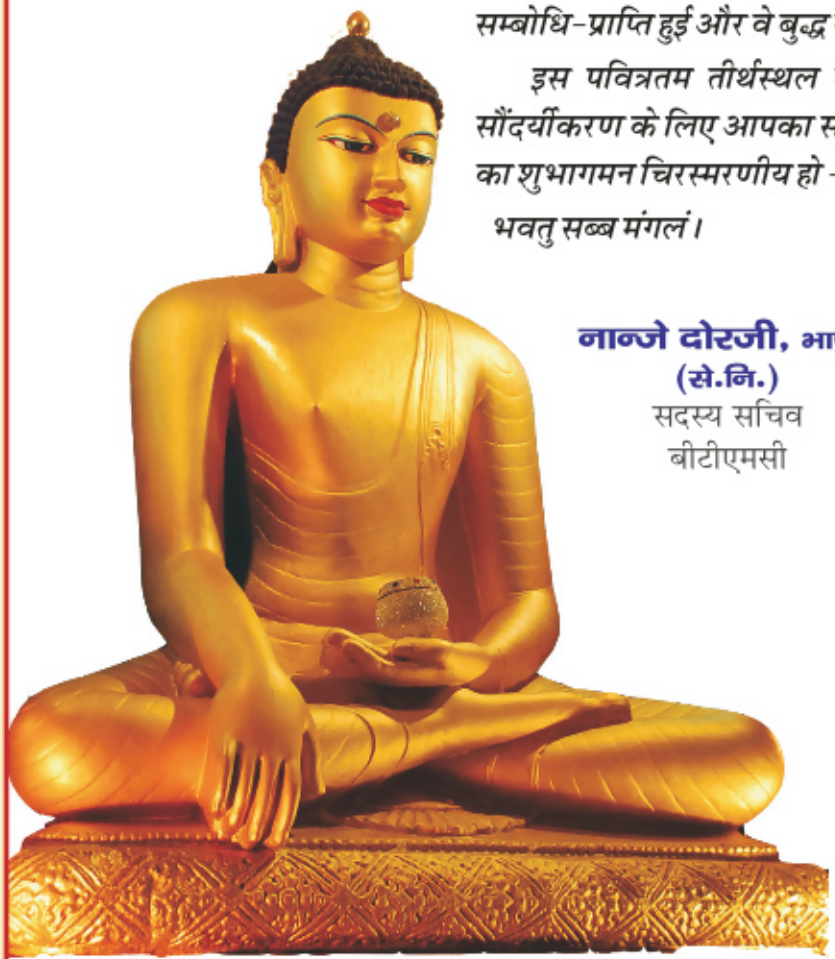

नान्जे दोरजी, भाप्रसे (से.नि.)
सदस्य सचिव
बीटीएमसी

बालामुरुगन डी., भा.प्र.से.
जिलाधिकारी गया-सह अध्यक्ष,
बीटीएमसी

सदस्य :-

भदन्त आर्य नागार्जुन सुरेई ससाई
भदन्त ज्ञानेश्वर महाथेरा
महंथ श्री सुदर्शन गिरी
डा.(श्रीमती) महाश्वेता महारथी
डा.(श्रीमती) कुमूद बर्मा
डा. राधकृष्ण मिश्र
डा. अरविन्द कुमार सिंह

अधिक जानकारी के लिए कृपया लॉग-ऑन करें : www.mahabodhimahavihara.org

दूरभाष : 0091-631-2200735 फैक्स : 2200777 ईमेल : mahabodhi@hotmail.com, bodhgayatemple@gmail.com

भगवान विष्णु का शृंगार विभूषित पूज्य–चरण

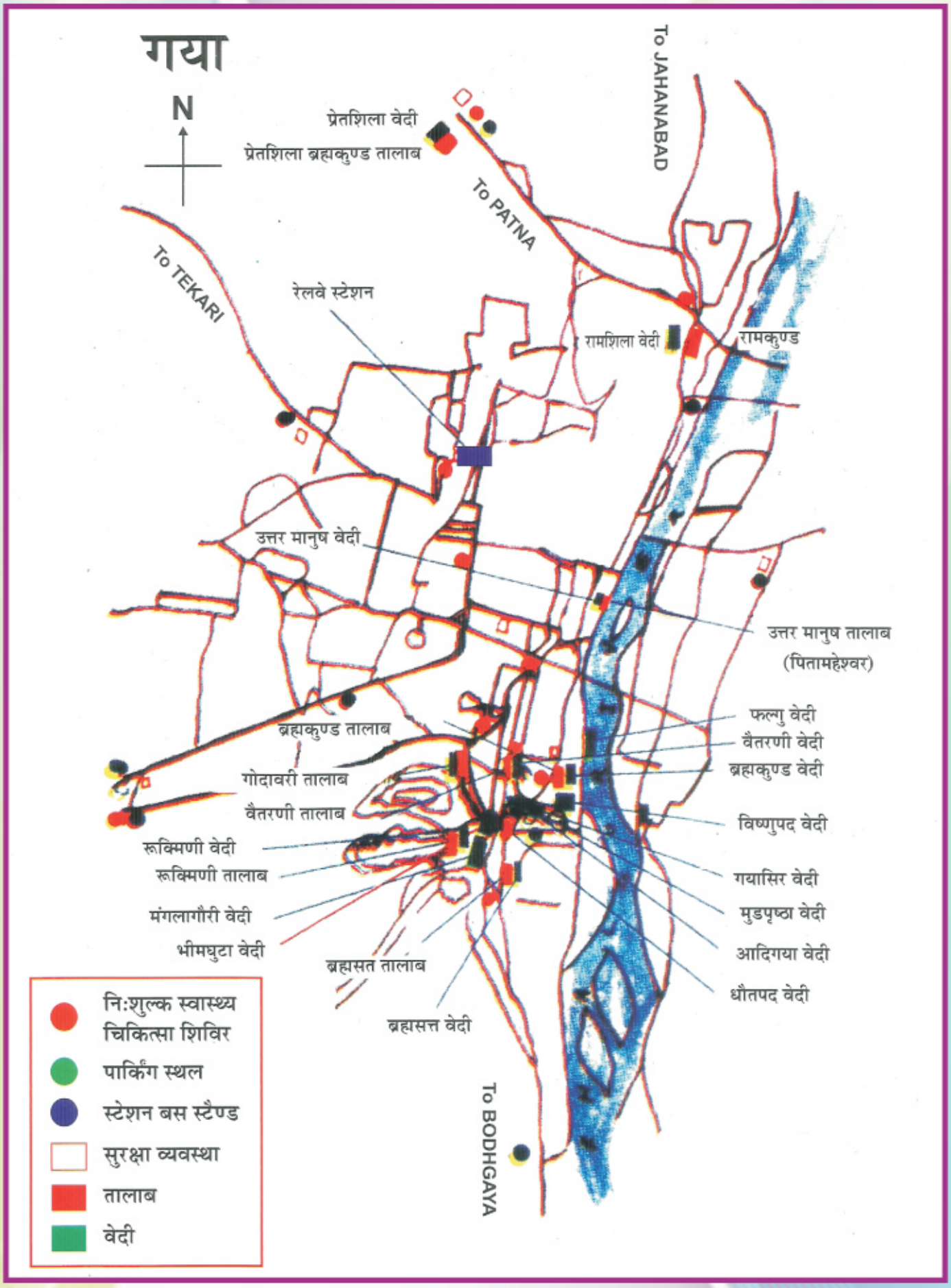
गया
N
प्रेतशिला वेदी
प्रेतशिला ब्रह्मकुण्ड तालाब
To PATNA
To JAHANABAD
To TEKARI
रेलवे स्टेशन
रामशिला वेदी
रामकुण्ड
उत्तर मानुष वेदी
उत्तर मानुष तालाब
(पितामहेश्वर)
फल्गु वेदी
वैतरणी वेदी
ब्रह्मकुण्ड वेदी
ब्रह्मकुण्ड तालाब
गोदावरी तालाब
वैतरणी तालाब
विष्णुपद वेदी
रूक्मिणी वेदी
रूक्मिणी तालाब
गयासिर वेदी
मुडपृष्ठा वेदी
मंगलागौरी वेदी
भीमघुटा वेदी
आदिगया वेदी
ब्रह्मसत तालाब
धौतपद वेदी
ब्रह्मसत्त वेदी
To BODHGAYA
नि:शुल्क स्वास्थ्य चिकित्सा शिविर
पार्किंग स्थल
स्टेशन बस स्टैण्ड
सुरक्षा व्यवस्था
तालाब
वेदी

स्मारिका परिवार

संरक्षक

बालामुरुगन डी, भा०प्र०से०
जिला पदाधिकारी, गया

प्रधान सम्पादक

गोवर्द्धन प्रसाद 'सदय'

सम्पादक

डा० राजदेव शर्मा

सम्पादक-मण्डल

कंचन कुमार सिन्हा

डॉ० राधानन्द सिंह

डा० सरदार सुरेन्द्र सिंह

डा० राकेश कु. सिन्हा 'रवि'

पितृपक्ष

एक झलक

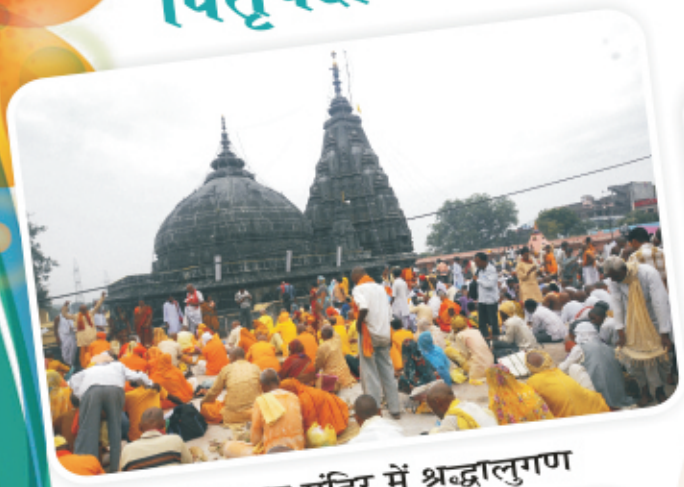

विष्णुपद मंदिर में श्रद्धालुगण

साधु-संतों के साथ तीर्थ-यात्री

पिण्डदान करते तीर्थ-यात्री

फल्गु में तर्पण

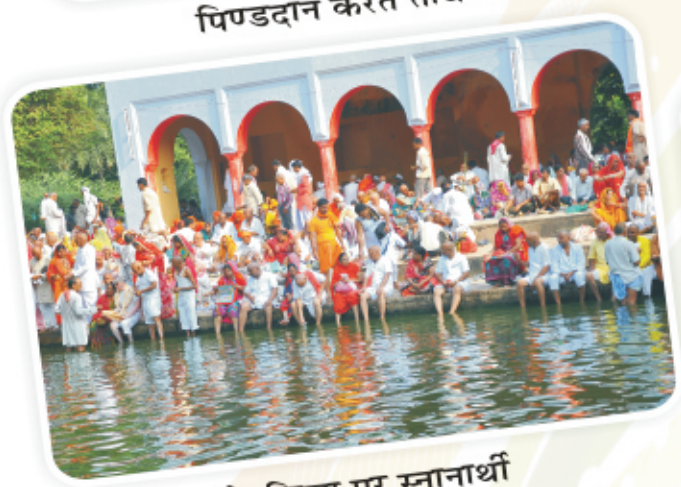

प्रेतशिला पर स्नानार्थी

पिण्डवेदी की परिक्रमा

सीताकुण्ड के निकट श्रद्धालुगण

तीर्थ-यात्रियों का मेला

पितृपक्ष

एक झलक

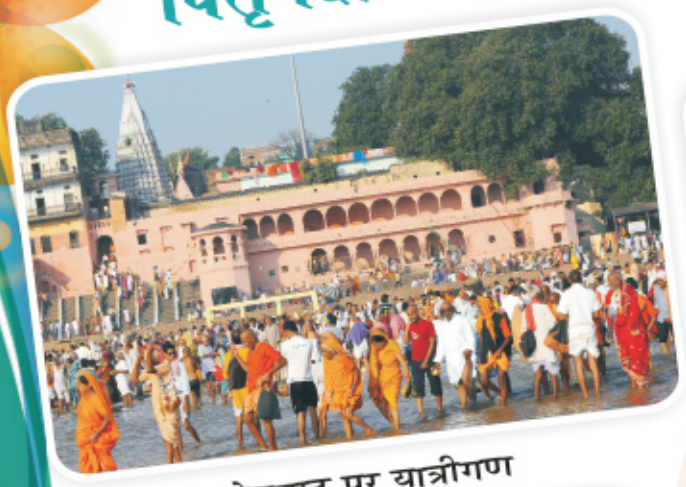

देवघाट पर यात्रीगण

महाबोधि मंदिर में पिण्डदान

पितर-पूजा में लगे तीर्थयात्री

फल्गु तट पर पितरों की दीवाली

पितरों की दीवाली मनाते पिण्डदानी

देवघाट का विहंगम् दृश्य

पण्डा जी से सुफल प्राप्त करते पिण्डदानी

फल्गु की आरती

पितृपक्ष

एक झलक

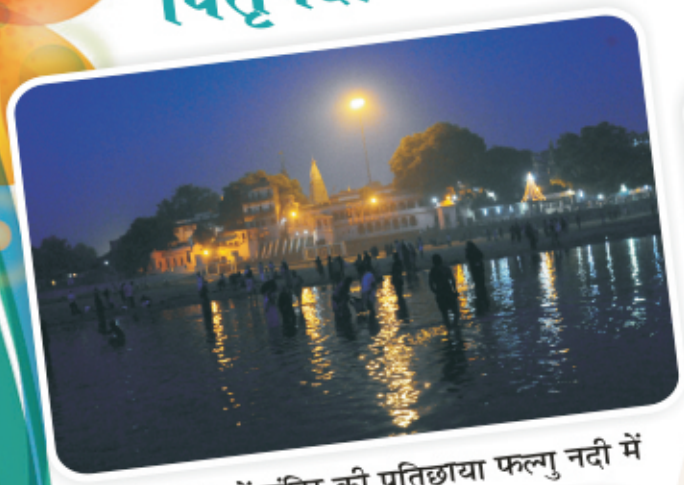

रात्रि-वेला में मंदिर की प्रतिछाया फल्गु नदी में

तर्पण करते तीर्थ-यात्री

पिण्ड वेदी पर पिण्डदान करते तीर्थ-यात्री

पिण्डदान का दृश्य

पितामहेश्वर पर पिण्ड कार्य करते श्रद्धालु

धर्मारण्य पर पिण्डदान

विष्णुपद सोलह वेदी पर पिण्डदान

प्रेतशीला पर बहँगी से जाते वृद्ध तीर्थ-यात्री

पितृपक्ष

एक झलक

अक्षयवट श्रद्धालुगण

फल्गु में पितरों का तर्पण करते पिण्डदानी

पिण्डदान करती महिला

पितरों की आत्मा की शांति की कामना

फल्गु नदी की बालु पर पिण्डदान करते भक्तगण

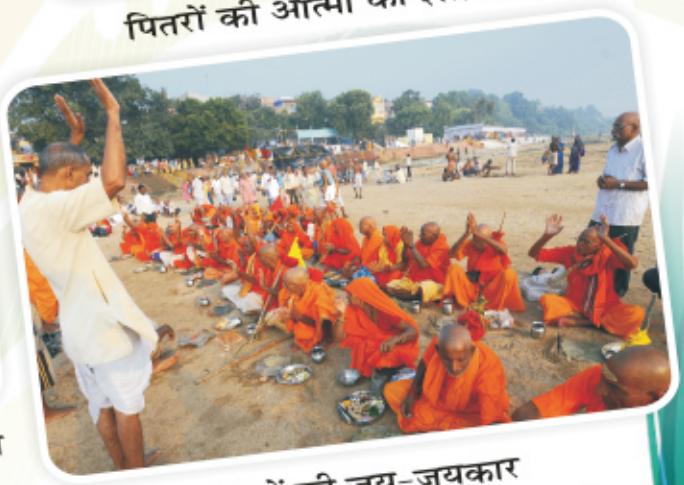

पितरों की जय-जयकार

तर्पण करते पिण्डदानी

देश-विदेश में हुई घटनाओं के पिण्डदान करते सुरेश नारायण

पितृपक्ष

मेले की तैयारी हेतु समीक्षा बैठक करते मा० मुख्यमंत्री

मेले की तैयारी का जायजा लेते जिलाधिकारी

पितृपक्ष पर प्रवचन करते धार्मिक कथा वाचक श्री संजय कृष्ण 'सलिल'

पिण्डदान करती सिने अभिनेत्री डिंपल कपाड़िया

एक झलक

पदाधिकारियों के साथ गया जं० पर मेले की तैयारी का जायजा लेते आयुक्त

नोबल पुरस्कार विजेता एवं विख्यात् अर्थशास्त्री प्रो० जोसफ स्टिग्लिट्ज

पिण्डदान करते अध्यात्मिक गुरु श्री श्री रविशंकर

पिण्डदान करते सिने अभिनेता एवं सांसद राज बब्बर

पितृपक्ष स्मारिका

तर्पण

2013

प्रधान सम्पादक

गोवर्द्धन प्रसाद सदय

सम्पादक

डॉ० राजदेव शर्मा

सम्पादन-सहयोगी

कंचन कुमार सिन्हा

डॉ० राधानन्द सिंह

डॉ० सरदार सुरेन्द्र सिंह

डॉ० राकेश कुमार सिन्हा 'रवि'

छायाचित्र :

मनीष भण्डारी

संयोजक

धीरज नारायण सुधाँशु, बि०सू०से०

जिला जन-सम्पर्क पदाधिकारी, गया

प्रकाशक

संतोष कुमार, बि०प्र०से०

सचिव

संवास सदन समिति, गया

साज-सज्जा एवं मुद्रण :

मगध प्रिन्टर्स

गाँधी चौक, के. पी. रोड, गया

स्वागतम स्वागतम स्वागतम

देश विदेश से आये तमाम श्रद्धालुओं का विष्णु नगरी गया में स्वागत, अभिनन्दन एवं कोटि-कोटि नमन। तीर्थ-यात्रियों की सेवा एवं उनकी संतुष्टि ही हमारा लक्ष्य ।

महत्वपूर्ण दूरभाष संख्या

गया (कोड - 0631)	कार्यालय	आवास	मोबाइल
आयुक्त, मगध प्रमंडल, गया	2225821	2229002	9473191426
पुलिस महानिरीक्षक, गया	2223085	2222352	9431822960
जिला पदाधिकारी, गया	2222900	2222800	9473191244
वरीय पुलिस अधीक्षक, गया	2225901	2225902	9431822973
नगर पुलिस अधीक्षक, गया	2224572	2225855	9473191722
उप विकास आयुक्त, गया	2224044	2222256	9431818351
निगम आयुक्त, गया	2228260	-	9470488794
अपर समाहर्त्ता, गया	2221024	-	9473191245
अनुमंडल पदाधिकारी, सदर, गया	2222357	-	9473191246
पुलिस उपाधीक्षक, नगर, गया	-	-	9431800110
सिविल सर्जन, गया	2220303	2420009	9470003278
सचिव, संवास सदन समिति, गया	-	-	9973960462
प्रशासक, संवास सदन समिति, गया	-	-	9471089341
जन शिकायत पदाधिकारी, गया	-	-	9955834580
जिला जन-संपर्क पदाधिकारी, गया	2226184	-	9798431468
अधीक्षक, मगध मेडिकल कॉलेज, गया	-	-	9470003301
प्रखंड विकास पदाधिकारी, नगर, गया	-	-	9431818068
अंचल अधिकारी, नगर, गया	-	-	9430559153
कार्यपालक अभियंता, विद्युत (शहरी), गया	-	-	9471976361
सहायक अभियंता, टेलीफोन, गया	-	-	9431200490
रेलवे स्टेशन प्रबन्धक, गया	-	-	9771427923
रेलवे टूरिस्ट इन्फौरमेशन सेन्टर, गया	2223635	-	-
रेलवे इन्क्वायरी, गया	2226131	2228283	131
संवास सदन समिति मेला नियंत्रण कक्ष, गया	2222304, 2222310	-	-
	2222312, 2222313		
रेड क्रॉस, गया	2220057	-	-
फायर ब्रिगेड, गया	2222258	-	9473199839

किसी भी जानकारी या समस्या के समाधान के लिए सम्पर्क करें :-

हेल्पलाईन : 9199905313, 9199905314

मेला नियंत्रण कक्ष : 2222304, 2222310, 2222312, 2222313

विषय सूची

1.	**शुभकामना संदेश**		–	1–9
2.	**सर्वधर्म समभाव की भूमि गया**	बाला मुरुगन डी०	–	11
3.	**भगवान विष्णु के चरणों का प्रसाद**	गोवर्द्धन प्रसाद सदय	–	12
4.	**गया-तीर्थ एवं गया-श्राद्ध कब करें ?**	स्वामी राघवाचार्य	–	14
5.	**श्रद्धा बिना धर्म नहीं होई**	डॉ० राजदेव शर्मा	–	16
6.	**गया-श्राद्ध की माहात्म्य-कथा : साक्ष्य वायु पुराण**	साहित्यवाचस्पति श्रीरंजन सूरिदेव	–	17
7.	**महाकवि कालिदास के काव्य में वर्णित श्राद्ध और तर्पण**	डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय 'नलिन'	–	21
8.	**मोक्षभूमि गया स्थित विष्णुपद मन्दिर**	डॉ० एस०एन०पी० सिन्हा	–	22
9.	**गीता धर्म**	डॉ० वेंकटेश शर्मा	–	24
10.	**मनुस्मृति में श्राद्धकर्म-व्यवस्था**	श्री जियालाल आर्य	–	26
11.	**मीरा बाई होने का अर्थ**	डॉ० वंशीधर लाल	–	28
12.	**गया श्राद्ध : परंपरा और प्रकर्ष**	डॉ० रामकृष्ण	–	30
13.	**पुण्य-तरु अक्षयवट**	प्रो० डॉ० महेश कुमार शरण	–	32
14.	**श्री रामचरितमानस में 'विष्णुपद' का विनियोग**	डॉ० राधानन्द सिंह	–	33
15.	**ज्ञान-सूर्य : स्वामी विवेकानंद**	डॉ० उमाशंकर प्रसाद	–	35
16.	**पितरों का मुक्ति-स्थल, गया धाम**	डा० पूनम कुमारी	–	37
17.	**मानव-जीवन में संस्कार का महत्त्व**	डॉ० सरदार सुरेन्द्र सिंह	–	39
18.	**युगयुगीन देवी-तीर्थ है गया**	डॉ० राकेश कुमार सिन्हा 'रवि'	–	41
19.	**जहाँ प्रथम पिण्डदान होता है : पुण्य सलिला पुनपुन**	डॉ० मनोज कुमार अम्बष्ठ	–	43
20.	**श्राद्धकर्म में पंचबलि की परम्परा**	श्री सुमन्त	–	45
21.	**मोक्षप्रदायी पक्ष : पितृपक्ष**	डॉ० शिववंश पाण्डेय	–	46
22.	**मृत्यु के बाद भी मृतात्मा से जुड़ा रहता है हमारा रिश्ता**	श्री कंचन	–	47
23.	**भारतीय संस्कृति का अंग है पितर-पूजा**	श्रीमती ममता मेहरोत्रा	–	48

24. तीर्थों का प्राण-गया जी	डॉ० राम सिंहासन सिंह	–	49
25. मगध में पिंडदान के सात स्थान	श्रीमती चंचला रवि	–	50
26. श्राद्ध गया में ही क्यों ?	श्री पदमाकर पाठक	–	51
27. परम लक्ष्य की सिद्धि के साधन	श्री अशोक कुमार सिन्हा	–	52
28. गया माहात्म्य एवं पिंडदान का महत्त्व	डा० राम निहोर पाण्डेय	–	53
29. मगध का लोक-पर्व	डॉ० सच्चिदानन्द प्रेमी	–	54
30. एक प्राचीन उपन्यास जिसमें वर्णित है गया का गौरव	डॉ० रामनिरंजन परिमलेन्दु	–	55
31. सत्संग	श्री राम बचन सिंह	–	58
32. श्राद्ध-पिण्डदान का पौराणिक स्थल कर्दमेश्वर वाराहेश्वर मनोकामना मंदिर	प्रो० कृष्णकांत पाण्डेय	–	59
33. मैं हूँ मधुश्रवा	आचार्य नवीन चद्र मिश्र वैदिक	–	60
34. प्राणियों की मुक्ति का पर्व पितृपक्ष	डॉ० शत्रुधन दांगी	–	61
35. मोक्षदायिनी फल्गु की व्यथा-कथा	राम नरेश सिंह 'पयोद'	–	62
36. शून्य से ब्रह्म तक	श्री राकेश कुमार 'मिन्टू'	–	64
37. जीवन में माँ का महत्त्व	डॉ० संकेत नारायण सिंह	–	65
38. भगवान् विष्णु का दिव्य स्वरूप	लीला कान्त झा	–	66
39. गुरु-महिमा	डॉ० सोनू अन्नपूर्णा	–	68
40. भक्त भद्रतनु पर भगवान् विष्णु की कृपा	श्री शिव वचन सिंह	–	69
41. पितृभक्ति श्राद्ध और तर्पण	आचार्य डॉ० गोपाल कृष्ण झा	–	70
42. नहीं बदली परम्परा	श्री सुनील सौरभ	–	73
43. आइएगा न, प्लीज!	श्री मुकेश कुमार सिन्हा	–	74
44. मानवीय मूल्यों को अपनायें	गणेश प्रसाद	–	75

स्मारिका में प्रकाशित रचनाओं में अभिव्यक्त विचारों के लिए स्वयं लेखक-गण उत्तरदायी हैं।

DR. D. Y. PATIL
GOVERNOR OF BIHAR

सत्यमेव जयते

RAJ BHAWAN
PATNA - 800 022
Ph. 0612-2217826 Fax 2786184

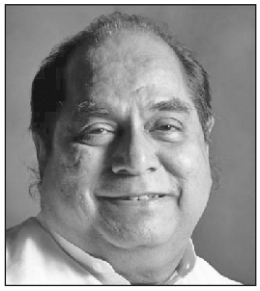

शुभकामना संदेश

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि जिला प्रशासन, गया के तत्वावधान में इस वर्ष आगामी 17 सितम्बर से 4 अक्टूबर 2013 तक विश्व प्रसिद्ध 'पितृपक्ष मेला' का आयोजन किया जाएगा।

'पितृपक्ष मेला' में दुनियाँ के लाखों तीर्थयात्री शामिल होकर अपने पितरों की आत्मा की चिरशांति के लिए तर्पण करते हैं। मेला की स्मृतियों को सँजोये रखने के लिए 'स्मारिका' के प्रकाशन का निर्णय भी स्वागत योग्य है।

मैं 'पितृपक्ष-मेला' के आयोजन एवं स्मारिका-प्रकाशन की सम्पूर्ण सफलता की मंगलकामना करता हूँ।

13/8/2013

(डॉ० डी० वाई० पाटिल)

मुख्यमंत्री
बिहार

बिहार सरकार

पटना

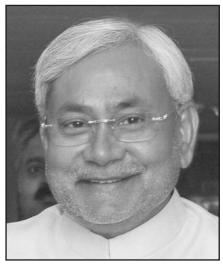

शुभकामना संदेश

यह प्रसन्नता की बात है कि पितृपक्ष मेला के अवसर पर जिला प्रशासन, गया ने एक स्मारिका प्रकाशित करने का निर्णय किया है। इस वर्ष यह मेला 18 सितंबर 2013 से प्रारंभ होगा 04 अक्टूबर, 2013 तक चलेगा।

आदिकाल से गया नगर का धार्मिक महत्व रहा है। गया ज्ञान, कर्म और अध्यात्म चिन्तन का केन्द्र है। प्रत्येक साल देश-विदेश से लाखों लोग यहाँ अपने के आत्मा की शांति के लिए पिण्डदान देने आते हैं और धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं। बाहर से आनेवाले श्रद्धालु एक पवित्र कामना की पूर्त्ति हेतु आते हैं। अतः उनका दर्जा आदृत अतिथि का है। इन्हें हर प्रकार की सुविधा मुहैया कराना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए ताकि आने वाले लोग अपने जेहन में इस मोक्ष धाम की उत्कृष्ट छवि लेकर लौटें।

आशा है, इस अवसर पर प्रकाश्य स्मारिका गया महात्म्य का दर्पण होगी।

(नीतीश कुमार)

उदय नारायण चौधरी
अध्यक्ष
बिहार विधान सभा

बिहार सरकार

Uday Narain Choudhary
Speaker
Bihar Legislative Assembly

शुभकामना संदेश

यह अत्यन्त ही हर्ष की बात है कि विश्व प्रसिद्ध 'पितृपक्ष मेला - 2013' इस वर्ष भी जिला प्रशासन, गया द्वारा आयोजित किया जा रहा है।

मगध प्रक्षेत्र अपनी कई पौराणिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक उपलब्धियों से भरा पड़ा है। पितृपक्ष के अवसर पर भारत एवं भारत के बाहर के श्रद्धालु एवं तीर्थयात्री गया आते हैं तथा अपने पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए उनकी आत्मा की शान्ति हेतु प्रार्थना कर पिण्डदान के माध्यम से पूजा-अर्चना एवं तर्पण करते हैं।

मैं पितृपक्ष मेला 2013 के सफल एवं शान्तिपूर्वक संचालन तथा इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली स्मारिका के सफल प्रकाशन की मंगल कामना करता हूँ।

(उदय नारायण चौधरी)

2, देशरत्न मार्ग, पटना
2, Deshratna Marg, Patna
☎ : 0612-2217856, 2217082 (O)
☎ : 0612-2215858, 2215232 (R)
Fax : 0612-2217373 (O) 2217343
e-mail : unchoudhary@gmail.com

रमई राम
मंत्री
राजस्व एवं भूमि सुधार
बिहार सरकार
पटना

बिहार सरकार

दूरभाष : 0612-2217355 (कार्यालय+फैक्स)
0612-2252125 (आ०)
मोबाईल: 9431800990

शुभकामना संदेश

मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि 18 सितम्बर 2013 से गया जिला मुख्यालय स्थित विष्णुपद मंदिर में 'पितृपक्ष मेला' का आयोजन किया गया है। यह मेला राज्य और देश ही नहीं बल्कि विश्वप्रसिद्ध हिन्दू धर्मावलम्बियों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण मेला है। यह परंपरागत मेला प्रत्येक वर्ष एक पक्ष तक चलता है। इसमें हिन्दू धर्म को मानने वाले सदस्य, समुदाय बड़ी संख्या में पहुँचकर अपने पूर्वजों का पिण्डदान करते हैं। पिण्डदान करने से उन मृतकों (पूर्वजों) को मोक्ष की प्राप्ति होती है और आश्रित श्रद्धालुओं को पुण्यलाभ मिलता है।

मेरी ओर से उक्त आयोजन की सफलता हेतु अशेष मंगलकामनाएँ।

10/9/13

(रमई राम)

शाहिद अली खान
मंत्री
अल्पसंख्यक कल्याण-सह-
सूचना प्रावैधिकी विभाग
बिहार, पटना

बिहार सरकार

شاہد علی خان
وزیر
محکمہ : اقلیتی فلاح اور
محکمہ : انفارمیشن ٹکنولوجی
بہار، پٹنہ

7, पोलो रोड, पटना, दूरभाष : 0612-2545072 (का०) 2210478 (का०) 2227161 (आ०)

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर काफी प्रसन्नता हो रही है कि विश्व प्रसिद्ध पितृपक्ष मेला गया नगर में 17 सितम्बर, 2013 से प्रारंभ हो रहा है और इस अवसर पर जिला प्रशासन गया की ओर से एक स्मारिका का भी प्रकाशन हो रहा है। पितृपक्ष के अवसर पर देश-विदेश के लाखों हिन्दू-धर्मावलम्बी गया की पावन धरती पर अन्त:सलिला फल्गु तट पर अपने पितरों की आत्मा की शांति के लिए तर्पण करते हैं। प्राचीन काल से ही गया विभिन्न धर्मावलम्बियों के लिए ज्ञान एवं आस्था का केन्द्रस्थल रहा है। विभिन्न धर्म और समुदाय के लोग यहाँ सामाजिक समन्वय और साम्प्रदायिक सौहार्द के साथ एक दूसरे के पर्व त्योहार में भाग लेते हैं। पितृपक्ष के अवसर पर लाखों तीर्थयात्री गया यात्रा करते हैं। हमें उम्मीद और विश्वास है कि उन्हें जिला प्रशासन और स्थानीय नागरिकों द्वारा बेहतर सुविधा मुहैया कराई जाएगी।

पितृपक्ष मेला की सफलता और तीर्थयात्रियों के मंगल गया प्रवास के लिए मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ।

(शाहिद अली खान)

Dr. Nandjee Kumar
Ph. D., FBS

VICE-CHANCELLOR

MAGADH UNIVERSITY
NH-83, Bodhgaya, Gaya - 824 234. (Bihar) India
E-mail : kumarnandjee@gmail.com
kumarnandjee@rediff.com
Mobile : 09431073451, 09006317598
Tele. : +91-631-2200444 (R) / 2222714 (R)
Fax : +91-631-2221717 (R), 2200572 (O)
Website : www.magadhuniversity.net

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी पितृपक्ष के पावन अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है। यह अवसर आस्था और श्रद्धा का है, जो हम अपने पितरों के प्रति प्रदर्शित करते हैं। केवल भारत ही नहीं विदेशों के लोग भी अपने पितरों की चिर शान्ति के लिए तर्पण-श्राद्ध हेतु गयाजी पधारते हैं। 'गया तीर्थ महातीर्थम्' की महत्ता सर्वविदित है। पूर्वजों के लिए तर्पण, श्राद्ध आदि का विधान और उनके प्रति अपनी श्रद्धा भावना की अभिव्यक्ति कर जो शान्ति मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अतीत के पुण्य स्मरण से अपने वर्त्तमान को सुखद बनाने के लिए आस्था और विश्वास का यह महापर्व लोक जीवन में सदियों-सहस्त्राब्दियों तक रचा-बसा रहेगा।

मुझे विश्वास है कि इस अवसर पर प्रकाशित स्मारिका देश-विदेश के श्रद्धालुओं के माध्यम से इस पर्व की महत्ता को प्रसारित करेगी। इस प्रकाशन की सफलता के लिए मेरी अनेक शुभकामनाएँ।

(डॉ० नन्दजी कुमार)
कुलपति

आर० के० खण्डेलवाल
भा०प्र०से०
आयुक्त
मगध प्रमण्डल
गया – 823 001 (बिहार)

सत्यमेव जयते

2225821 (का०)
2229002 (आ०)
0631–2221641 (फैक्स)
ई–मेल–divcom-magadh-bihar@nic.in

शुभकामना संदेश

इस वर्ष पितृपक्ष मेला 18 सितम्बर से प्रारंभ होकर 4 अक्टूबर 2013 तक चलेगा। इस अवसर पर देश–विदेश के लाखों तीर्थयात्री मोक्षधाम गया आकर अपने पितरों की मुक्ति एवं उनकी आत्मा की शांति हेतु पिण्डान एवं तर्पण करते हैं। यहाँ आनेवाले श्रद्धालुओं के आवासन, पेयजल, सुरक्षा व्यवस्था, चिकित्सा व्यवस्था, यातायात एवं परिवहन, सफाई इत्यादि सभी सुविधाओं के लिए जिला प्रशासन, गया द्वारा व्यापक तैयारियाँ की गई हैं। मैंने भी इस संबंध में पदाधिकारियों को आवश्यक दिशा निर्देश दिए हैं।

गया न केवल सनातन धर्मावलम्बियों के लिए बल्कि अन्य धर्मों के अनुयायियों के लिए भी महत्वपूर्ण स्थल है। बोधगया में भगवान बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई और उन्होंने सत्य, अहिंसा और करुणा का संदेश दिया। यह स्थल विश्व के समस्त बौद्ध धर्मालम्बियों के लिए आस्था का महान केन्द्र है। बोधगया को विश्व धरोहर घोषित किया गया है। गया जिला में अनेक मनोहारी पर्यटक स्थल हैं। यहाँ से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पुरावशेष मिले हैं। ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण गया के समृद्ध विरासत के संरक्षण एवं यहाँ के पर्यटक स्थलों के विकास के लिए सरकार निरंतर प्रयत्नशील है।

यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि पितृपक्ष मेला 2013 के अवसर पर जिला प्रशासन, गया द्वारा 'तर्पण' नामक स्मारिका प्रकाशित की जा रही है। मुझे विश्वास है, यह पितृपक्ष मेला से संबंधित पहलुओं से जनमानस को अवगत कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

पितृपक्ष मेला के आयोजन एवं स्मारिका प्रकाशन की सफलता की शुभकामनाओं सहित।

(आर० के० खण्डेलवाल)
आयुक्त
मगध प्रमण्डल

बच्चू सिंह मीणा
भा०पु०से०
पुलिस उप–महानिरीक्षक
मगध क्षेत्र, गया।

सत्यमेव जयते

मोबाईल– 9431822960
कार्यालय– 0631–2223085
आवास– 0631–2222349
फैक्स – 0631–2222352

शुभकामना संदेश

यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी पितृपक्ष मेला के अवसर पर जिला प्रशासन, गया द्वारा एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

विश्व प्रसिद्ध पितृपक्ष मेला में देश–विदेश के सनातन धर्मावलम्बी अपने पितरों का पिण्डदान एवं तर्पण करने गया पधारते हैं। मुझे विश्वास है स्मारिका के माध्यम से आमजनों एवं श्रद्धालुओं को पितृपक्ष के विषय में ज्ञानवर्द्धक जानकरियाँ मिल सकेंगी।

पितृपक्ष मेला – 2013 के आयोजन एवं स्मारिका प्रकाशन की सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

(बच्चु सिंह मीणा)

निशांत कुमार तिवारी
भा०पु०से०
वरीय पुलिस अधीक्षक, गया

सत्यमेव जयते

मोबाईल– 9431822973
कार्यालय– 0631–2225901
आवास– 0631–22225902
ई–मेल : sp-gaya-bih@nic.in

शुभकामना संदेश

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी सांस्कृतिक नगरी गया में, दिनांक 18.09.2013 से विश्व-प्रसिद्ध पितृपक्ष मेला का शुभारम्भ हो रहा है। सदियों से विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच यह मेला पवित्र एवं आस्था का प्रतीक रहा है। इस अवसर पर देश-विदेश से लाखों की संख्या में तीर्थयात्री पधार कर इस आस्था-नगरी में अपने पितरों की मुक्ति के लिए पण्डिदान कर मुक्ति हेतु कामना करते हैं।

इस अवसर पर पुलिस प्रशासन द्वारा की गई व्यवस्थाओं का मैंने स्वयं निरीक्षण किया है तथा अपने अधीनस्थ पुलिसर्मियों को आदेश दिया है कि वे इस अवसर पर तीर्थयात्रियों को पर्याप्त सुरक्षा एवं सुविधा दिलायें, इसके लिए तत्परता से कार्य करें, अपनी सेवाओं से आये तीर्थयात्रियों को पर्याप्त सुरक्षा एवं सुविधा दिलायें, अपनी सेवाओं से आये तीर्थयात्रियों को प्रभावित करें, ताकि वे जब अपने-अपने घरों को लौटें तो वे गया एवं गया के पुलिसकर्मियों के बारे में अपने हृदय में एक अच्छी छवि संज्ञा कर ले जा सके। मेला क्षेत्र में 24 घंटे गश्ती का प्रबंध रहेगा तथा थानों के जिम्मेदार अधिकारी तीर्थ यात्रियों की सुविधा के लिए सदैव तैयार रहेंगे। किसी भी असुविधा या सहयोग के लिए कोई भी व्यक्ति मुझसे व्यक्तिगत रूप से अथवा विभिन्न थानों में प्रतिनियुक्त अधिकारियों से दूरभाष पर सम्पर्क स्थापित कर पुलिस की सेवा ले सकेगा।

मेरा विश्वास है कि पितृपक्ष मेला पूरी तरह से सफल होगा, यहाँ आये सभी यात्री प्रशासन, पुलिस एवं गयावासियों के सहयोग एवं समर्पण से संतुष्ट होकर वापस लौटेंगे। मेरी कामना है कि प्रकाश्य स्मारिका तीर्थयात्रियों एवं पर्यटकों के लिए मार्गदर्शक के साथ-साथ शोधपत्र के रूप में पहचानी जायेगी।

(निशांत कुमार तिवारी)

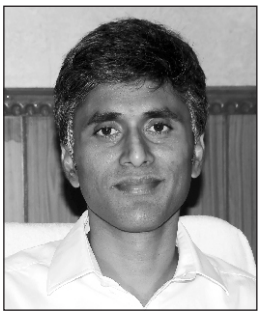

सर्वधर्म समभाव की भूमि गया

– बाला मुरुगन डी०

अत्यंत समृद्ध और गौरवशाली ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत के लिए विश्व विश्रुत गयाधाम अपने हृदय में श्रीहरि विष्णु का चरण कमल धारण करने एवं भगवान बुद्ध की ज्ञानस्थली होने के कारण विश्ववन्द्य है। चर्च, गुरुद्वारा, मस्जिदों एवं दरगाहों, जैन मंदिर तथा हिन्दू देवी-देवताओं के अनेकानेक मंदिरों एवं धार्मिक स्थलों ने इसे सर्वधर्म समन्वय का केन्द्र बना दिया है। इस जिला के अनेक नयनाभिराम रमणीय स्थल पर्यटकों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। गया में पदस्थापना से पूर्व मैं दूर से ही इसे जानता-सुनता रहा, परंतु यहाँ आकर इसे नजदीक से समझने का मौका मिला। इस वैविध्यपूर्ण जिले की सेवा करने का मुझे अवसर मिला, यह मेरा सौभाग्य है।

भारतीय वाङ्मय में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष- ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं और व्यक्ति अपने सामर्थ्य के अनुसार इनके लिए प्रयत्नशील रहता है। मोक्ष अथवा मुक्ति के लिए कर्म, ज्ञान और भक्ति- ये तीन साधन माने गये हैं। परंतु ऐसी मान्यता है कि गया में आकर श्राद्ध-तर्पण करने से पितरों को मुक्ति प्राप्त हो जाती है और उनकी आत्मा को चिरशांति मिलती है। इसी आस्था और विश्वास के साथ देश-विदेश के लाखों सनातन धर्मावलम्बी अपने पितरों का पिण्डदान एवं तर्पण करने के लिए मोक्षधाम गया पधारते हैं।

आज के परिवेश में व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है और हमारे बुजुर्ग उपेक्षित महसूस कर रहे हैं। आगे बढ़ने की होड़, भाग-दौड़ की जिन्दगी, विकास के उच्चतम शिखर को छूने की महत्वाकांक्षा, वैज्ञानिक विकास, पीढ़ीगत अंतर (Generation Gap) की खाई आदि कारणों ने हमें बड़े-बुजुर्गों से दूर कर दिया है और वे एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त हैं। ऐसे में श्राद्ध और तर्पण आदि कर्मकाण्डों से पितरों को मोक्ष प्राप्ति संबंधी धारणा निश्चय ही बुजुर्गों के प्रति आदर और सम्मान का भाव बढ़ाने वाला है।

इस वर्ष पितृपक्ष मेला 18 सितम्बर से प्रारंभ होकर 4 अक्टूबर तक चलेगा। इस अवसर पर आनेवाले तीर्थ यात्रियों को आवासन, स्वच्छ पेयजल, चिकित्सा सुविधा, यातायात एवं परिवहन सुविधा, सुरक्षा व्यवस्था, गंदगीमुक्त तालाब, घाट एवं पिण्डवेदियाँ, प्रकाश इत्यादि सुविधायें उपलब्ध कराना हमारा दायित्व है और जिला प्रशासन इनके लिए पूरी तरह सचेष्ट और तत्पर है। हमारी पूरी कोशिश रहती है कि श्रद्धालुओं को गया प्रवास के दौरान किसी प्रकार की असुविधा नहीं हो और वे निश्चिंत होकर श्राद्ध तर्पण आदि कार्य विधिसम्मत तरीके से सम्पन्न कर सकें। पितृपक्ष मेला के अवसर पर आनेवाले तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए राज्य सरकार भी निरंतर प्रयत्नशील है। बिहार के माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार ने स्वयं गया आकर इस संबंध में वरीय पदाधिकारियों के साथ बैठक की और महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश दिए। यह सरकार की संवेदनशीलता को परिलक्षित करती है। तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए गया के नागरिक एवं स्वयंसेवी संस्थाएँ भी सचेष्ट रहती है।

इस वर्ष यह एक सुखद संयोग है कि 15 सितम्बर से हज यात्रा शुरु हो रही है और पूरे बिहार के हज यात्री मक्का के लिए गया से ही रवाना हो रहे हैं। हज यात्रियों के जाने एवं वापस आने के क्रम में उन्हें सभी सुविधायें मुहैय्या कराने हेतु व्यापक तैयारियाँ की गई हैं। इस कार्य में हमें रजाकारों का उल्लेखनीय सहयोग मिल रहा है। हमलोगों का सौभाग्य है इस वर्ष हमें हिन्दू एवं इस्लाम धर्मावलम्बियों का साथ-साथ सेवा करने का सुअवसर मिला है।''अतिथि देवो भव:'' की भावना को आत्मसात करते हुए यहाँ आनेवाले तीर्थ यात्रियों की सेवा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

पितृपक्ष मेला के अवसर पर वर्ष 1995 ई० से ही वरिष्ठ साहित्यकार श्री गोवर्द्धन प्रसाद सदयजी के कुशल संपादन में स्मारिका प्रकाशित होती आ रही है और इस वर्ष भी इस स्वस्थ परंपरा का निर्वहन किया जा रहा है जो स्तुत्य है। आशा है, पितृपक्ष मेला-2013 के अवसर पर प्रकाशित होनेवाली स्मारिका 'तर्पण' के ज्ञानवर्द्धक आलेख भारतीय संस्कृति, परम्परा और मूल्यपरक तथ्यों से जनमानस को अवगत कराने में सक्षम होंगे। मैं इसके संपादक, संपादक मंडल, विद्वान लेखकों, विज्ञापनदाताओं एवं इसके प्रकाशन में सहयोगी सभी महानुभावों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

अनंत मंगलकामनाओं सहित।

जिला पदाधिकारी-सह-अध्यक्ष
संवास सदन समिति, गया

भगवान विष्णु के चरणों का प्रसाद

सम्पादकीय

प्राणिमात्र अनवरत आनन्द में रहना चाहता है। सबकोई सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करना चाहता है। कोई भी व्यक्ति नहीं चाहता कि उसके सुख में, आनन्द में कभी भी खलल पड़े। हमारे समझ में जो भौतिक जगत है और जो साधन हमें उपलब्ध है; उनकी सुलभता में ही हम आनन्द की प्राप्ति चाहते हैं। किन्तु जो भौतिक पदार्थ, जो भौतिक जगत हमें दिखाई पड़ता है, वह अत्यन्त सीमित है। हमारे पास चर्मचक्षुओं की भी सीमा है। बाह्यान्तरिक अनन्ताकाश के अवलोकन की क्षमता इन में नहीं है। अत: भौतिक कामनाओं की ही पूर्त्ति में हम लगे रहते हैं। और इन्हीं की पूर्त्ति में सुख तथा अप्राप्ति में दु:ख का अनुभव करते हैं। किन्तु ये कामनाएँ ऐसी हैं; जिनकी सर्वांश रूप में प्राप्ति किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। कामनाओं के हजारों पर लगे होते हैं। एक कामना पूरी हुई कि तुरंत दूसरी कामना जन्म ले लेती है। ये कामनाएँ भौतिक हैं। विषय-वासनाओं से संलिप्त हैं। इसी कारण, इसमें शाश्वत सुख या आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। एक के बादएक कामनाओं से तुष्टि प्राप्त करने की जितनी भी चेष्टाएँ की जाती हैं, कामनाएँ उतनी ही बढ़ती रहती हैं। सारी वासनाएँ पूर्ण नहीं हो पातीं। फलत: जीवन दु:ख-ग्रस्त हो जाता है। और तब, मनुष्य आत्म-मंथन करता है। इसी स्थिति में उसे यह पता चलता है कि भौतिक वासनाओं से क्षणिक सुख तो मिल सकता है; किन्तु वह आनन्द और सुख नहीं प्राप्त हो सकता, जिसे हम स्थायी कहते हैं। स्थायी सुख और आनन्द वासनाओं के शमन से ही प्राप्त हो सकता है। अत: यह निर्विवाद है कि सुख आत्मनिष्ठ है। जब तक हम बाह्य सुख-सुविधाओं की लालसा को त्याग कर अध्यात्म्य की ओर नहीं मुड़ेंगे; तब तक आन्तरिक सुख और आनन्द दुर्लभ है। किन्तु इस मोड़ तक आने के लिए मनुष्य का हृदय संवेदनशील होना चाहिए। संवेदनशील हृदय में ही श्रद्धा विश्वास-स्वरूप गौरीशंकर प्रतिष्ठित हो सकते हैं। और हमारी अनन्त इच्छाएँ शान्त हो सकती हैं।

भारतीय उपासना-विधि में जितने भी विधान बताये गए हैं, उस सभी में श्रद्धा के भाव को ही सर्वोपरि रखा गया है। पितृपक्ष की अवधि मे जो श्राद्ध-कर्म, पितर-पूजा, तर्पण-पिण्डदान आदि किए जाते हैं, वह भी उसी का अंश है। हम अपने पर्वजों की स्मृति में श्राद्धपूर्वक एकत्र होते हैं और उनकी आत्मा की चिर-शान्ति के लिए विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं। यह एक प्रकार से अध्यात्मिक जुड़ाव है और इससे हम अपने 'स्वं' से ऊपर उठकर परार्थ के सान्निध्य में आते हैं। यह प्रक्रिया मनुष्य को इतना संवेदनशील बना देती है कि वह इस के माध्यम से ही न केवल अपने पूर्वजों, अपने परिवार-समाज, आदि समस्त प्राणिमात्र के साथ प्रेम सौहार्द तथा अपनत्व का भाव रखता है।

इसी उदात्त भाव से अनुप्रेरित देश के लाखो तीर्थ-यात्री गया धाम में आते हैं और अपने पूर्वजों की आत्मा की चिरशान्ति के लिए विभिन्न प्राकर के अनुष्ठानों को सम्पादित करते हैं। गया-प्रशासन की ओर से उनके रहन-सहन-सुरक्षा आदि की व्यवस्था तो की ही जाती है; साथ ही उनके सात्विक मनोरंजन के लिए भजन कीर्त्तन-प्रवचन का भी कार्यक्रम सम्पन्न कराया जाता है। इसी कड़ी में पिछले कई वर्षों से एक वार्षिक प्रकाशन भी हो रहा है। प्रस्तुत 'तर्पण 2013 इसी कड़ी का अट्ठारहवाँ पुष्प है। यह पितृ-पक्ष स्मारिका 1995 ई० से 2011 ई० तक निरंतर निकलती रही; किन्तु बीच में मात्र 2012 ई० में इसका प्रकाशन किसी कारणवश बाधित हो गया। विश्वास है, अब आगे के वर्षों में इनका नैरंतर्य पुन: बाधित न होगा। यहाँ पर यह निवेदन कर दूँ कि बिहार तथा बाहर के जाने-माने सुप्रतिष्ठ लेखकों-साहित्यकारों का कृपापूर्ण सहयोग बराबर मिलता रहा है। विद्वान लेखकों ने मेरे आग्रह की कभी उपेक्षा नहीं की। मैं अपने सभी लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। इस अंक में जिन संस्थाओं ने विज्ञापन देकर इसे सुदृढ़ बनाने में सहयोग दिया है, मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ। साथ ही अपने सम्पादन-मण्डल के सदस्यों का भी आभारी हूँ कि वे मेरे वार्धक्य और रूग्णावस्था को देखकर, इसक अंक के प्रकाशन में भरपूर और सतत सहयोग देते रहे है।।

गया के जिलाधिकारी श्री बाला मुरुगन डी; संवास सदन के सचिव श्री संतोष कुमार जी तथा जिला जनसम्पर्क पदाधिकारी श्री धीरजनारायण सुधांशु के प्रति सम्पादक-मण्डल आभार व्यक्त करता है। सम्मान्य पदाधिकारियों ने समुचित मार्ग-दर्शन दिया और इसके प्रकाशन में सुरूचिपूर्ण सहयोग प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप स्मारिका इस रूप में पाठकों के समझ प्रस्तुत हो सकी। हमारे सम्पादन-मण्डल के सदस्यों ने पूरी चेष्टा की है कि स्मारिका को दोषमुक्त रखा जाय; फिर भी यदि कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों, तो उसके लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं। स्थानाभाव, समयाभाव आदि के कारण बहुत से आलोखों को हम समाविष्ट नहीं कर सके हैं; साथ ही भावों, विषयों, तथ्यों की पुनरावृत्ति से बचने के कारण बहुत से लेखों में काट-छाँट करनी पड़ी- इसके लिए भी हम अपने विद्वान लेखकों से क्षमा-याचना करते हैं; वे हमारी इस विवशता के लिए हमें क्षमा प्रदान करेंगे।

हमारे सम्पादन-मण्डल के प्रत्येक सदस्य ने इस वार्षिक प्रकाशन के कार्य को भगवान की पूजा समझ कर ही सम्पादित किया है। अत: हमारे पाठक-गण भी इसे भगवान विष्णु के चरणों का प्रसाद समझ कर ही ग्रहण करेंगे।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

- गोवर्द्धन प्रसाद सदय

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरित निस्पृहः।
निर्मनो निरहंकारः शान्ति मधिगच्छती।।

गीता- 2/71

- जो मनुष्य सब इच्छाओं को त्याग देता और कामना-रहित होकर कार्य करता है, जिसे किसी वस्तु के साथ ममत्व नहीं होता और जिसमें अहंकार की भावना होती, उसे शान्ति प्राप्त होती है।

गया-तीर्थ एवं गया-श्राद्ध कब करें ?

स्वामी राघवाचार्य

पाँच कोस में गया क्षेत्र है। उसमें भी एक कोस का क्षेत्र प्रधान (मुख्य) गया तीर्थ है। गया जी में कोई ऐसी जगह नहीं है कि जो तीर्थ नहीं हो। ब्रह्माण्ड के सभी तीर्थों का वास गया जी में है। इसलिए गया तीर्थ सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है।

पंच क्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः।
तन्मध्ये सर्व तीर्थानि त्रैशमेकं गयाशिरः।।
गयायां नहि तत्स्थानं यत्र तीर्थ न विद्यते।
सानिध्यं सर्व तीर्थानां गया तीर्थ नतोवरम।। (वायु पु०ग०म०)

जैसे भगवान विष्णु की पूजा अर्चना करने से सभी यज्ञ पूर्ण हो जाते हैं, वैसे ही गया में किया गया श्राद्ध-तर्पण-स्थान अक्षय होकर प्राप्त होता है। ध्यानपूर्वक प्रसन्न होकर किये गये पितृयजन से पितरों की परम गति होती है। गया में निश्चय रूप से मुक्ति देने वाले परमात्मा आज भी द्रस्यमान हैं।

यथार्चिते हरौ सर्व यज्ञाः पूर्णा भवन्ति च।
तथा श्राद्धं तर्पणं चस्नानं वाक्षय्यमस्त्विह।। (वायु पु० गया महात्म्य)
मोदते याजितोध्यातः पितृणां परमागतिः।
गयायां परमात्मा हि दृयतेद्यापि मुक्तिदः।।

श्री वेदव्यास जी कहते हैं कि गया-तीर्थ में पिण्डदान करने ने मनुष्य जिस फल को प्रापत करते हैं, उस फल की महिमा मैं करोड़ों कल्पों में भी वर्णन नहीं कर सकता।

गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः।
न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्प कोटि शतैरपि।

जन-मानस में यह आस्था बैठी हुई है कि आश्विन कृष्ण पक्ष में ही गया श्राद्ध करना चाहिए। लेकिन होना यों चाहिए कि आश्विन कृष्ण में भी गया श्राद्ध करना चाहिए। क्योंकि आश्विन कृष्ण पक्ष में कन्या के सूर्य में सभी के पितर सब के घर पहुँ जाते हैं। यमालय खाली हो जाता है। वह अपने पुत्रों से (वंशजो से) श्राद्ध चाहते हैं। आश्विन कृष्ण से लेकर कार्तिक मास तक श्राद्ध की आशा लगाये सब के घर रहते हैं।

इसलिए इन दिनों में (श्राद्धपक्ष में) कन्द, मूल, फल से भी पितृ-श्राद्ध करना चाहिए। इस अवसर पर जो अपने घर पितरों का श्राद्ध नहीं करते तो पितर दारूण शाप देकर भूखें लौट जाते हैं।

कान्यागते सवितरि पितरोयान्ति वैसुतान्।
शून्याप्रेत पुरी सर्वा यावद् वृश्चिक दर्शनम्।।
ततो वृश्चिक सम्प्राप्ता निराशाः पितरोगताः।
पुनश्च भुवतं यान्ति शापं दत्वा सुदारूणम।।

उपरोक्त यमस्मृति के वाक्य हैं, किन्तु हेमाद्रि ने नागर खण्ड का उद्धरण देकर लिखा है कि जैसे किसान (खेती करने वाले) तन्द्रा को छोड़कर बादलों (वर्षा) की प्रतीक्षा करते हैं। उसी तरह प्रेतपक्ष में महती आकांक्षाओं को लेकर पितर अपने-अपने पुत्रों के

घर पहुँचकर श्राद्ध की प्रतीक्षा करते हैं।

प्रेतपक्षं प्रतीक्षन्ते गुरूवाज्छा समन्विताः।
कर्षका जलदं यदवद् दिवानक्त मतन्द्रिताः।
तावच्छाद्धं प्रवाज्छन्ति दतं वै पितरः सुतैः।

इससे सिद्ध होता है कि आश्विन कृष्ण में अपने पर श्राद्ध करने के लिए सर्वोत्तम है। यदि गया में आकर पिण्डदान करता है तो वह भी ठीक है। आश्विन पितृपक्ष में ही गया श्राद्ध करना चाहिए यह निर्मूल है। आश्विन में भी गया श्राद्ध करना चाहिए यह समीचीन है, शास्त्र सम्मत है। वेद, शास्त्र एवं पुराणों में वसन्त ऋतु का परिगणन गया श्राद्ध के लिये प्रथम किया है। वसन्त ऋतु के प्रथम मास चैत्र के कृष्ण पक्ष का विशेष माहात्म्य है। क्योंकि कृष्णपक्ष पितरों का दिन तथा शुक्लपक्ष रात कही गयी है। दिन में श्राद्ध करना उत्तम एवं रात में मध्यम् है। तैल और गैगू के बिना श्राद्ध पूर्ण नहीं होता (बिना तैल गोधूमेन श्राद्धं न शेष्यते) गैहू रस से परिपूर्ण होकर वसन्त में ही तैयार होता है और अधिकांश तिलहन भी। अतः चैत्र मास गया श्राद्ध के लिये सर्वप्रथम एवं सर्वोत्तम है।

वायु पुराण के गया माहात्म्य में भी सर्वप्रथम चैत्र को ही ग्रहण किया गया है मीनमास (चैत्रमास) दूसरा मेषमास (वैशाखमास) तीसरा कन्यामास (आश्विन मास) चौथा कार्मुकमास (पौषमास) पाँचवां घटमास (फाल्गुनमास) छटा मकरमास (माघमास) इस के बाद गया श्राद्ध में सूर्य और चन्द्र ग्रहण का है। इन अवसरों (कालों) में तीनों लोकों के लोगों को गया में पिण्डदान करना दुर्लभ है। अर्थात् सवोर्त्तम है।

मीने मेषेस्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे।
दुर्लभं त्रिषुलोकेषु गयायां पिण्ड पातनम्।।
मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्र सूर्ययोः।
दुर्लभं त्रिषुलोकेषु गयायां पिण्ड पातनम्।। (वायु पु० गया माहात्म्य)

अतः रूढ़ीवाद को छोड़कर गया में उपरोक्त सभी महीनों में श्राद्ध पिण्डदान करना चाहिए। वेद ने भी उपर्युक्त महीनों का ही वर्णन किया है।

नमोवः पितरोरसाय नमोवः पितरः शोषाय नमोवः
पितरोजीवाय नमोवः पितरः स्वधायै नमोवः पितरो
धोराय नमोवः पितरो मन्यव नमोवः पितरः पितरो नमो
वो गृहान्नः पितरोदत सतोवः पितरोदेष्मै तद्वः पितरो वासः। (सु०यजु०अ०2म०32)

इस मन्त्र में सर्वप्रथम पितृ सम्बन्धी रस रूप वसन्त को नमस्कार किया है। क्योंकि वसन्त ऋतु में ही मधु आदि रस उत्पन्न होते हैं। (वसन्तेहि मध्वादयोः रसाः सम्भवन्ति) और मधु के बिना श्राद्ध सम्भव नहीं है। दूसरी बात चैत्र मास का नाम भी मधुमास है। वैशाख को माधव मास कहते हैं जो चैत्र का समीपवर्ती मास है। बिना माधव की कृपा के किसी का तारण नहीं होता। मधु माधव के संयोग से ही पितरों की सदगति होती है। अतः चैत्रमास कृष्ण पक्ष ही श्राद्ध के लिये उपयुक्त एवं सर्वोत्तम मास है। इसके बाद ग्रीष्म ऋतु रूप पितरों को नमस्कार किया है फिर वर्षा रूप पितरों को तत्पश्चात् स्वधा (शरत) ऋतु को नमस्कार किया है।

''स्वधावैशरत स्वधावै पितृणामन्नम् शतेक्षुतेः स्वधा नाम शरत ऋतु का है पितरों के अन्न को स्वधा कहते हैं ऐसा श्रुति कहती है। अन्नों का परिपाक स्वधा ऋतु में ही होता है। (शरदि हि प्रायशेडन्नानि भवन्ति) आश्विन कार्तिक शरद ऋतु है। अतः प्रथम वसन्त दूसरे शरद का गया श्राद्ध में विशेष महत्व है। इसी प्रकार सभी ऋतुओं के पितरों को नमस्कार किया गया है। पितरों के विशेष सामर्थ्यवान होने से बार-बार नमस्कार किया है और माँग की है कि हम को स्त्री पुत्रादि से युक्त घर दो तथा हमारे दिये पदार्थ को स्वीकार करो इससे सिद्ध हुआ कि गया के लिए चैत्रमास सर्वोत्तम मास है। आश्विन मास का महत्त्व उसके बाद ही है। ऐसे तो

गया में सभी काल में श्राद्ध होता है। और करना भी चाहिए। अधिक मास हो जन्मदिन हो गुरू शुक्र भी अस्त हो तो भी गया श्राद्ध बन्द नहीं होता। सिंह राशि में वृहस्पति होने पर तीर्थ यात्रा बन्द रहती है। किन्तु गया श्राद्ध सिंह के वृहस्पति में भी करना चाहिए।

गयायां सर्व कालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः।
अधिमासे जन्मदिने तथास्ते गुरूशुक्रयोः।।
नत्यक्तव्यं गया श्राद्धं सिंहस्थे च वृहस्पतौ।

यहाँ तक कि बेटा–बेटी का विवाह भी किये हों तो भी गया श्राद्ध निषेध नहीं है।

कृतोद्वाहोडपि कुर्वीत पिण्डरानं यथाविधि।।
मृताहश्च सपिण्डञ्च गया श्राद्धं महालयम्।।

गया श्राद्ध करने के लिए चैत्र, आश्विन, पौष और माघ सर्वोत्तम है। किन्तु गया में कोई भी महीना या दिन अथवा तिथि श्राद्ध में वर्जित नहीं है। सभी समय में करना चाहिए।

श्री रामानुजाचार्य मठ, देवघाट, गया

श्रद्धा बिना धर्म नहीं होई

डॉ० राजदेव शर्मा

पूज्यपाद गोस्वामी जी का यह सर्वतंत्र सिद्धान्त है कि श्रद्धा के बिना धर्माचरण नहीं होता है। श्रद्धा वह मनोवृत्ति है जिसमें गुरुजनों, पितरों, महज्जनों, वेद–शास्त्रों एवं आर्षवचनों के प्रति विश्वास के साथ पूज्यभाव उत्पन्न होता है। यह एक दैवी गुण है। योगदर्शन में श्रद्धा को मन का प्रसाद या स्थैयंभाव कहा गया है – श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः। सभी धर्मों के लिए श्रद्धा आवश्यक और अत्यंत हितकारक है। श्रद्धा से मनुष्य इहलोक और परलोक प्राप्त करता है। श्रद्धा से पत्थर की पूजा करे तो वह फलप्रद होता है। मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, गुरु आदि में जैसी श्रद्धा होती है, वैसा फल मिलता है। श्रद्धा करना एक धार्मिक अनुष्ठान है। श्राद्ध का तो सीधा सम्बंध श्रद्धा से है। 'श्राद्ध' शब्द का निर्माण ही श्रद्धा से होता है। अपने पितरों के प्रति श्रद्धायुक्त होकर जो कुछ अर्पण किया जाता है, उसे श्राद्ध कहते हैं। अश्रद्धा से किया गया कोई कर्म–धर्म फलप्रद नहीं होता। अमुक धर्म का अनुष्ठान अभिष्ट कार्य की सिद्धि करेगा, इस विश्वास के साथ साधना में जो प्रवृत्ति होती है, उसका नाम श्रद्धा है। इसलिए गीता में कहा गया है कि मनुष्य जैसी श्रद्धा से युक्त होता है, वह उसी के अनुसार हो जाता है – यो यच्छद्धः स एव सः।

प्रायः सभी मनीषियों ने भगवत् प्रेम को सबसे बड़ा धर्म माना है – स वै पुसां परो धर्मो, ऐसी भागवतकार की स्थापना है। इस श्रेष्ठतम धर्म की भित्ति भी श्रद्धा पर खड़ी है। अपने प्रेमास्पद के प्रति श्रद्धाभाव ही भक्त को प्रेम के अनुरक्त होने की प्रेरणा देता है। भक्त के मन में स्थित यह श्रद्धा ही उसे विज्ञानी बनाती है। श्रद्धा अनेक रूपों में प्रकट होती है। इसलिए श्रद्धा को 'शतरूपा' कहा जाता है। यह शतरूपा श्रद्धा ज्ञान (मनु) की सहचरी (पत्नी) है। श्रद्धा और ज्ञान का मिलन ही विज्ञान को जन्म देता है। अकेली श्रद्धा अंधी और अकेला ज्ञान अहंकारी होता है। अतः श्रद्धा और ज्ञान का संगम आवश्यक है। यह संगम ही प्रेम को जन्म देता है। नारद के अनुसार भक्तिरूप श्रेष्ठ धर्म प्रेम का रूप लेता है। अतः भक्ति को प्रेमरूपा माना गया है – सा परम प्रेमरूपा।

भक्ति प्रेमरूपा होने के साथ–साथ श्री–विश्वासरूपिणी भी है। जहाँ भक्ति है, वहाँ प्रेम, श्रद्धा और विश्वास– तीनों अवश्य रहते हैं। कहा गया है– बिनुविस्वास भगति नहिं। विश्वास वास्तविकता का भाव है– जेमे मदेम वि त्मंसपजल किसी बात में विश्वास करने का है कि वस्तुतः विद्यमान है। विश्वास निश्चय ही संशय–संदेह का वैपरीत्य भाव में खड़ा रहता है। इसलिए गीता में कहा गया कि संशय–संदेह से मुक्त पुरुष के लिए न यह लोक है, न परलोक और न सुख ही–

नायं लोकोऽस्तिन परो न सुखं संशयात्मनः।

(गीता 4/40)

गीता (17/2) में श्रद्धा को 'स्वभावजा' नाम दिया गया है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति स्वभाव या रुचि-वैचिय से होती है। रुचि का नाम स्वभाव है। जिस कर्म में रुचि होती है, उस कर्म में श्रद्धा होती है। वासना, रुचि और श्रद्धा ये तीनों आत्मा के धर्म हैं, जो सत्त्वादि गुणों के संसर्ग से होते हैं। सत्त्वादि गुण ही श्रद्धा के उत्पादक हैं। अतएवगुण भेद से श्रद्धा तीन प्रकार की होती है। मनुष्य का मन जिस तरह कर्म गुण से युक्त होता है, उस पुरुष में वैसी ही श्रद्धा होती है। सत्त्वगुण से युक्त मन में सात्त्विक श्रद्धा, रजोगुण से युक्त होने पर राजस श्रद्धा और तमोगुण से युक्त होने पर तामस श्रद्धा के अनुरूप ही फल प्राप्त होता है। इस तरह फल की प्राप्ति में श्रद्धा ही हेतु बनती है। जो मनुष्य पुण्य कर्म (धर्म) विषयक श्रद्धा से युक्त होता है, उसे उत्तम फल मिलता है। पापकर्म (अधर्म) विषयक श्रद्धा से युक्त होने पर उसका फल भी पाप या अधर्म मिलता है।

श्रद्धा को लेकर ही आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश होता है, फिर चाहे वह कर्मयोग का हो, चाहे ज्ञानयोग का हो और चाहे भक्तियोग का हो साध्य और साधन-दोनों पर श्रद्धा हुए बिना आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश नहीं होता। इसमें सात्विक श्रद्धा सवेश्वर भगवान् की ओर राजसी-तामसी श्रद्धा संसार की तरफ ले जाती है। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, उसकी श्रद्धा सात्विक होती है, जो मनुष्य इस जन्म में या अगले जन्म भी सुख-सम्पत्ति, स्वर्ग, भोग आदि की कामना करता है, उसकी श्रद्धा राजसी होती है और जो मनुष्य पशुओं की तरह केवल खाने-पीने, भोग भोगने तथा आलस्य, प्रमाद, खेल-तमाशा आदि में लगा रहता है, उसकी श्रद्धा तामसी होती है। सात्त्विकी श्रद्धायुक्त मनुष्य को यह दृढ़ विश्वास रहता है कि परमात्मा है और उसे हमें प्राप्त करना है। इसीलिए वैदिक ऋषियों का मानना है कि श्रद्धा से सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है।

श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर, लक्खीबाग, गया

गया-श्राद्ध की माहात्म्य-कथा : साक्ष्य वायु पुराण

साहित्यवाचस्पति श्रीरंजन सूरिदेव

वायु पुराण के 83वें अध्याय में शंभु मुनि ने वृहस्पति से गया-श्राद्ध के दान में फल के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा- श्राद्ध में तिल, जौ, उड़द, जल, मूल, फल और फूलों को दान करने से पितर लोग एक मास तक संतुष्ट रहते हैं। गौ-दान करने से पितरों को एक वर्ष की संतुष्टि प्राप्त होती है। जो मनुष्य अपने पितरों के लिए, उनकी मृत्यु के वर्ष-भर के भीतर, गया जाकर श्राद्ध करता है, वह अपनी समस्त कामनाओं की पूर्णता को प्राप्त करता है और मरने पर स्वर्गलोक में पूजित होता है।

वायु पुराण में गया-श्राद्ध की विधि का भी निर्देश किया गया है। तदनुसार गया जाने के लिए उद्यत होकर सर्वप्रथम विधिपूर्वज श्राद्ध कर काषायवस्त्र (गेरुआ रंग रंगा हुआ वस्त्र) धारण करना चाहिए। तदनन्तर अपने ग्राम या नगर की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। और फिर, दूसरे ग्राम में जाकर शेष श्राद्धान्न का भोजन करना चाहिए। केश, दाढ़ी आदि का मुण्डन गया धाम पहुँचकर ही कराने का विधान है। वास्तविक फल की प्राप्ति के लिए गयाश्राद्ध कार्य अकृपण भाव से करना चाहिए। ब्रह्मकुण्ड तथा प्रयासक्षेत्र में एवं ब्रह्मवेदी और प्रेतशिला पर्वत पर विधिपूर्वक पिण्डदान करना चाहिए।

गयाधाम में विष्णुपद का दर्शन कर नारायण का स्मरण करना चाहिए। वहाँ पर शास्त्रीय विधि-विधान के साथ पिण्डदान करने से कोटि कुलों का उद्धार होता है। गयाश्राद्ध में पहले से ही सुनिश्चित वेदज्ञ ब्राह्मणों को भोजन कराना आवश्यक है। उन ब्राह्मणों को साधारण मनुष्य न मानकर उन्हें देवोपन समझना चाहिए। उन ब्राह्मणों के संतुष्ट होने पर पितरों के साथ देवता भी संतुष्ट होते हैं। उनके सुपूजित होने पर दिवंगत प्राणी मुक्ति प्राप्त करता है। गयाकूप में तो अपने वर्ण और जाति के मित्र, परिवार एवं सुहृद् सबके लिए विधिपूर्वक पिण्डदान करना चाहिए। इससे वे सभी प्राणी मुक्ति प्राप्त करते हैं और स्वर्ग-गामी हो जाते हैं। जिन लोगों के नाम-गोत्र-कुल आदि का पता नहीं होता, वे भी गयाकूप में पिण्डदान से अक्षय तृप्ति करते हैं। पिण्डदान का मंत्र इस प्रकार हैं:-

सवर्णा जातयो मिश्रा बान्धवाः सुहृदश्च ये।
तेभ्यों भूप गयाकूपे पिण्डा देया विधानतः।।
तेऽपि यान्ति दिवं सर्वे पिण्डदा इति नःश्रुतम्।
पितृवंश समुत्पन्ना मातृवंशे तथैव च।
गुरुश्वशुर बन्धुनां ये चान्ये बान्धवास्तथा।
येमे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदार विवर्जिताः।
विलूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले भम।।
क्रियालोपगता से चान्ये से च गर्भसंस्थिताः।
तेभ्यो दन्तो मया पिण्डो ह्रदयक्षय्यमुपतिष्ठताम्।।
(अध्याय 83, श्लोक, 29-33)

अर्थात्, ''गयाकूप मे अपने वर्ण के जाति के मित्र, परिवार-वर्ग एवं सुहृद् जो भी हों, सबके लिए विधिपूर्वक पिण्डदान करना चाहिए। इनको पिण्डदान करने वाले सभी लोग भी स्वर्ग जाते हैं, ऐसा हमने (वृहस्पति ने) सुना है। जिन लोगों के नाम-गोत्र ज्ञात नहीं हैं, ऐसे जो पिता के वंश में या माता के कुल में पुत्र, श्वसुर, उनके भाई-बन्धु तथा अन्यान्य जो बान्धव-वर्ग में हों, मेरे कुल में जिनको पिण्ड प्राप्त करने की आशा नष्ट हो गई हो, जो पुत्र, स्त्री आदि से रहित हों, और मेरे कुल के जो ज्ञाताज्ञात रूप से उत्पन्न हुए हों, जो विरूप और सगा रहे हों, जिनकी सत्क्रियाएँ लुप्त हो गई हों, अर्थात् दुराचारी रहें हों, अथवा गर्भावस्था में ही जिनका विनाश हो गया हो, उन सबके उद्देश्य से दिया गया यह पिण्ड उन्हें अक्षय तृप्ति प्रदान करे।''

गया-श्राद्ध में अपने कुल में उत्पन्न होनेवालों के लिए तिल के साथ पिण्डदान करने का विधान है। ब्रह्महत्या करने वाले, मदिरपायी, कृतघ्न एवं महापापी लोगों के लिए भी गया में पिण्डदान करने से वे सभी उद्धार प्राप्त करते हैं।

गया के समान दुर्लभ तीर्थ तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) में कहीं नहीं है। पितर-समूह यह आशा करते है कि कुल में भी कोई ऐसे सन्मार्गगामी पुत्र उत्पन्न होंगे, जो हमारे लिए आदरपूर्वक गया में पिण्डदान करेंगे। मूल श्लोक है -

अपि नस्ते भविष्यन्ति कुल सन्मार्गशीलिनः।
गयाभुपेत्य ये पिण्डान् दास्यन्त्स्माकभदरात्।।

गया में पिण्डदान के समय के बारे में गम्भीरता से विचार किया गया है। मकर राशि में सूर्य के होने पर, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसर पर, पितृपक्ष में और चैत्रमास में पिण्डदान करने से महान फल प्राप्त होता है। पुनः अधिकमास या मलमास में, अपने जन्मदिन में, गुरु और शुक्र के अस्त होने पर, सिंह राशि में वृहस्पति के आने पर गया श्राद्ध नहीं छोड़ना चाहिए। बुद्धिमान लोग तो सर्वदा गया में अपने पितरों के लिए पिण्डदान करते हैं।

गया में पितरों की निधन-तिथि के अवसर पर श्राद्ध करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। और फिर जप, हवन, तप आदि करने से भी अक्षय फल मिलता है।

गया-श्राद्ध में दान पानेवालों की योग्यता या पात्रता की भी व्यापक उल्लेख हुआ है। इस अवसर पर सत्पात्रों में दिया गया दान अक्षय फलदायी होता है। गया-श्राद्ध में सद्गुण-सम्पन्न ब्राह्मणों की जो पूजा करता है, वह पितरों के साथ समस्त लोकों की पूजा करता है। मित्रदोही, नास्तिक, वेद को न जाननेवाला, उन्मत्त, नपुंसक, गुरु की सेज पर सोने वाला, दुष्ट प्रकृतिवाला, गर्भ की हत्या करने वाला, परस्त्रीगामी, विद्या-विक्रेता, कृतघ्न, निन्दक, अधार्मिक, मिथ्याभासी, जूता पहने हुए ही भोजन करनेवाला तथा तिरस्कारपूर्वक दान देनेवाला, ऐसे व्यक्तियों से मिला दान नहीं लेना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया गया दाम अपवित्र एवं निष्फल होता है।

गयाश्राद्ध के अवसर पर देश, काल और पात्र की उत्कृष्टता पर ध्यान देने की आवश्यकता पर वायुपुराण में ततोऽधिक बल दिया गया है। और इस सम्बंध में व्यापकता के साथ विचार किया गया है। वायुपुराण में वृहस्पति कहते हैं – सुरम्य नदियों, सरिताओं एवं सरोवरों के तट पर किये गये श्राद्ध से पितरों को बहुत तृप्ति मिलती है, इसीलिए गया की फल्गु नदी का तट श्राद्ध के लिए अतिशय प्रशस्त और पुण्यप्रद माना जाता है। पितृपक्ष में (आश्विन मास का कृष्णपक्ष) में गया की फल्गु नदी के तट पर सुदूर देश–देशान्तर से श्राद्धार्थी जन पधारते हैं। कहा भी गया है –

जीवतो वाक्यपालंन मृताहे भूरिभोजनम्।
गयायां पिण्डदानं च त्रिभिः पुन्नस्य पुत्रता।।

अर्थात्, जीवन भर पिता के वचन का पालन करना, उनके श्राद्ध के दिन प्रचुर भोजन कराना और गया में पिण्डदान करना – इन्हीं तीन बातों से पुत्र की पुत्रता सार्थक होती है।

गया–श्राद्ध के क्रम में ही वृहस्पति ने श्राद्ध–विधि की अनेक बातों पर प्रकाश–निक्षेप किया है। वायुपुराण के ही 78वें अध्याय में लिखा है – रात्रि के समय श्राद्धकर्म वर्जित रखना चाहिए। जो व्यक्ति ग्रहण के अवसर पर श्राद्धकर्म नहीं करता, वह कीचड़ में फँसी गाय की तरह यातना सदृता है और जो श्राद्धकर्म करता है, वह पाप–सागर से नौका की तरह उद्धार पा जाता है।

वायु पुराण के 77वें अध्याय में 'अमरकण्टक' पर्वत का वर्णन किया गया है। यह पर्वत तीनों लोकों में श्रेष्ठ और पुण्यप्रद है। इस पर्वत पर महर्षि अंगिरा ने अरबों वर्षों तक प्राचीन काल में परम कठोर तपस्या की थी। उस पर्वत पर मृत्यु की गति नहीं है। असुरों एवं राक्षसों से भी भय नहीं है। वहाँ लक्ष्मी का अभाव नहीं रहता है। जो बुद्धिमान व्यक्ति पवित्र अमरकण्टक पर्वत पर, कुशों के बीच एक बार भी पिण्डदान करता है तो पितर पिण्डदाता को परम प्रसन्नतापूर्वक अक्षय फल प्रदान करते हैं।

आज भी उस पवित्र पर्वत ज्वाला सरोवर अवस्थित है। वहीं हड्डीवाले जीवों को रोगमुक्त करनलेवाली 'विशल्यकरणी' नाम की झील है। वे पुरूष धन्य माने जाते हैं, जो अरमकण्टक पर्वत पर जाकर श्रद्धाभाव से श्राद्धकर पितरों को संतुष्ट करते हैं।

वायुपुराण के अनुसार, महेन्द्र पर्वत पर श्राद्ध करने से महान फल प्राप्त होता है। वह इन्द्र द्वारा सेवित एक पुण्यप्रद स्थान है। श्राद्ध के उपर्युक्त तीर्थों और क्षेत्रों के वर्णन–क्रम में वायुपुराण में उल्लेख है कि कुरूक्षेत्र सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ माना गया है। वहाँ पर तिलों का दान करने से पितरों को सर्वदा के लिए अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है।

गया–श्राद्ध–विधि के वर्णन क्रम में, पितरों स्वरूप का निरूपण भी वायुपुराण में विस्तार से किया गया है। इस पुराण के बहत्तरवें अध्याय में श्राद्धकल्प को प्रस्तुत करते हुए सूतजी ने कहा है कि परम बुद्धिमान पितरों के सात गण हैं, जिनमें चार मूर्त्तिमान हैं और तीन अमूर्त्त हैं। अमूर्त्त पितर ब्रह्मा के पुत्र–स्वरूप हैं और ये 'विरज' नाम के लोक में विराजते हैं। इसलिए ये वैराज के नामसे लोक प्रसिद्ध हैं। हिमवार की सुन्दरी पुत्री मेना इन्हीं की मानसी पुत्री थीं, जिनसे मैनाक पर्वक की उत्पत्ति हुई।

मैनाक सभी प्रकार के रत्नों और समस्त औषधियों का आगार एवं अतिशय पुण्यशाली हुआ। क्रौंच पर्वत, जिसका वर्णन 'मेघदूत' काव्य में हुआ है, इसी मैनाक का पुत्र हुआ। मेना से पर्वतराज की तीन कन्याएँ हुईं – अपर्णा, एकवर्णा और एकपाटता। पर्वतराज की ये तीनों कन्याएँ कठोर तपस्विनी हुईं। माता मेना ने स्नेह से दु:खी हो तपस्या से विरत करने से लिए अपर्णा से निषेघ के स्वर में 'उ मा' (ओ, ऐसा मत करो) कहा। तब से वह उमा के नाम से लोक–विख्यात हुई। एकपर्णा तो एक पत्ते को आहार के रूप में लेती थी एकपाटला एक पाटलपुष्प पर जीवन–निर्वाह करती थी। अपर्णा तो एक पर्ण (पत्ता) भी नहीं लेती थी, इसीलिए वह 'अपर्णा' कहलाई। उमा ने महायोगी शिवजी को पति के रूप में प्राप्त किया। बुद्धिसागर गणेश और देवों के सेनापति कार्त्तिकेय दोनों इनके पुत्र हुए।

पुन: पितरों के बारे में बृहस्पति ने बताया कि पितर स्वर्ग के 'सोमपद' नाम के लोक में मरीचि मुनि के पुत्र–रूप में सुख से निवास करते हैं, जहाँ देवता–गण इनकी पूजा करते हैं। ये पितर 'अग्निष्वात्ता' नाम से विख्यात हैं। वहाँ इन तेजस्तवी पितरों की मानसी कन्या 'अच्छोदा' नाम की नदी के रूप में प्रवाहित है। इसी से निकला अच्छोद नाम को सरोवर भी विराजमान है। जिसका वर्णन महाकवि वाणभट्ट ने अपनी 'कादम्बरी' नाम की पुस्तक में बड़ी सरस गद्य–शैली में किया है।

वायुपुराण में वायु ने गया के माहात्म्य का ततोऽधिक विस्तार से वर्णन किया है। तदनुसार गया तीर्थ सभी तीर्थों में सर्वाधिक पुण्यप्रद है। ब्रह्मा के अनुरोध पर गयासुर ने यहाँ तपस्या की थी। गयासुर के शिर पर एक शिला की स्थापना कर यज्ञ सम्पन्न किया था। गयासुर विचलित न हो जाय, इसलिए ब्रह्मा आदि देवताओं के साथ भगवान् गदाधर फल्गु आदि तीर्थों के रूप में रात-दिन वहाँ स्थित रहते हैं। (वायुपुराण : अध्याय 105)

वायुपुराण के ही अनुसार पितर नरक के भय से गया जैसे परम पुनीत क्षेत्र में निवास करते हैं। गयातीर्थ में जाकर जो पुत्र अन्न दान करता है, उससे वे अपने को पुत्रवान् मानते हैं। गया-तीर्थ में निवास करने से भी महान फल प्राप्त होता है। महान से महान पाप भी गया-श्राद्ध से विनष्ट हो जाता है। गयाक्षेत्र में जिस-जिस के नाम से पिण्डदान किया जाता है, उस सबको शाश्वत ब्रह्मपद प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मज्ञान, गोशाला में मृत्युलाभ, गयाश्राद्ध एवं कुरूक्षेत्र में निवास - ये चार कर्म पुरुषों के लिए मोक्षदायक है। ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए परम प्रिय मुक्तिदायी इस गयाक्षेत्र में यदि कोई असावधानी से भी मृत्युलाभ करता है तो उसे निस्सन्देह मुक्ति प्राप्त होती है। गयामहात्म्य में कहा भी गया है -

सकृद गयाभिगमनं सकृत पिण्डस्य पातनम्।
दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेद व्यवस्थितिः।।
प्रमान्म्रियते क्षेत्रे ब्रह्मादेर्मुक्तिदायके।
ब्रह्मज्ञानादृथा मुक्तिर्लभ्यते नात्र संशयः।।

भगवान् ब्रह्मा ने गयातीर्थ का परिमाण ढाई कोस का, गयाक्षेत्र का पाँच कोस का तथा गयाशिर का एक कोस का बतलाया है। तीनों लोकों में जितने तीर्थ हैं, वे इसी एकमात्र गयातीर्थ के भीतर स्थित हैं जो मनुष्य गयाक्षेत्र में श्राद्ध करता है, वह पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है। गयाशिर में श्राद्ध करनेवाना अपने सौ कुलों का उद्धार करता है। घर से गया प्रस्थान करने मात्र से पितरों को पग-पग पर स्वर्गारोहण की सीढ़ियाँ मिलने लगती हैं।

त्रैलोक्य-विख्यात जो वैतरणी नदी है, वह पितरों को तारने के लिए ही गया क्षेत्र में उतरी है। उस वैतरणी में स्नान कर गोदान करने वाला अपने इक्कीस कुलों को तारता है। अक्षववट के पास जाकर जो ब्रह्मपारायण ब्राह्मणों की पूजा करता है, वह महान् पुण्यफल को प्राप्त करता है। उन ब्राह्मणों के संतुष्ट हो जाने पर समस्त पितर और देवगण संतुष्ट हो जाते हैं। उस पवित्र गयातीर्थ में कोई स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ कोई न कोई तीर्थ विद्यमान न हो। वहाँ सभी तीर्थों का सान्निध्य रहता है। गयातीर्थ सब तीर्थों से बढ़कर है।

गया की पुण्यमयी प्रेतशिला की पुराकथा है - एक बार सक्मपरिजात नामके वन में, बहुत प्राचीन काल में शिवजी पार्वतीजी के साथ परिजात वन में दस सहस्र युगव्यापी रहस्य-क्रीड़ा कर रहे थे। तभी मरीचि ऋषि उस वन में जा पहुँचे। सुख-विघातक होने से शिवजी ने ऋषि को दु:खी हो जाने का अभिशाप दिया। शापग्रस्त ऋषि प्रार्थना करने पर शिव ने कहा कि गयातीर्थ जाने पर आप अभिशाप-मुक्त होंगे। शाप से मरीचि ऋषि का शरीर काला पड़ गया था। गयातीर्थ जाने पर उनका शरीर उज्जवल वर्ण का हो गया और शिव के शाप से भी मुक्त हो गये।

शिव के ही आदेशानुसार शापित मरीचि गया में स्थित शिला पर बैठकर कठोर तप करने लगे। तपस्या से प्रसन्न शिव ने उन्हें शापमुक्त कर दिया और उनके प्रार्थना करने पर जिस शिला पर बैठकर मुनि तप करते थे उसे उन्होंने परम पुनीत शिला के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। आज के लोक में वही शिला प्रेतशिला के रूप में जानी जाती है। इस प्रेतशिला को पाण्डुशिला भी कहते हैं। वायुपुराण की कथा है कि प्राचीन काल में युधिष्ठिर ने अपने स्वर्गस्थ पिता पाण्डु के लिए श्राद्धकर्म सम्पन्न किया था। उस शिला पर जब युधिष्ठिर श्राद्ध करने गये, उस सेमय प्रेतरूप पाण्डु ने कहा कि मेरे हाथों पर पिण्ड प्रदान करो। किन्तु युधिष्ठिर ने शिला पर पिण्ड प्रदान किया, जिससे पाण्डु को परम हर्ष प्राप्त हुआ (वायु० : गया मा०)

शुभैषणा, श्रीनगर कॉलोनी, पंचवटी नगर के निकट
संदलपुर, पो०- महेन्द्रू, जिला - पटना (बिहार)
दूरभाष : 0612-6590145

महाकवि कालिदास के काव्य में वर्णित श्राद्ध और तर्पण

डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय 'नलिन'

महाकवि कालिदास संस्कृत के महाकवियों में सर्वाधिक तेजस्विता से पूर्ण है उनके जैसा संस्कृत के कवियों में कोई महाकवि नहीं है। इनकी वाणी के समान किसी कवि की वाणी नहीं है। इनकी वाणी रसोद्‌गार गर्भ निर्भर और प्रसन्नपदावलियों से समलकृत है। प्राचीन काल में जब कवियों की गणना होने लगी तो वे कानष्ठा अंगूली प्रतिष्ठित हुए और उनके समान कोई दूसरा नाम नहीं आ सका इस कारण उसके बाद वाली अंगूली बिना नाम के रह गयी।

कला कवियायं गणना प्रसंगे
कनिष्ठकाधिष्ठित गणना प्रसंगे
रभावात् अनामिका सार्थभति बभ्‌वः।।

प्रकृति के चारू चित्रकार,

सौन्दर्य और प्रेम के संगायक महाकवि कालिदास की भाषा सर्वथा निर्दोष और गुण समूहों से संग्रसित है–

अस्टारद दोषा न लिनिव द्रष्टा
हारावलिव ग्रसिता गुणौधई।
प्रियांकपालिव विभर्ग हृदय न कालिदासा दपरस्यवाणी।

महाकवि कालिदास स्वयं महाकवि के तथापि अपने काव्य में शैव काव्य के साथ रघूवंश महाकाव्य का भी साधु निबंधन किया है। महाकवि ने राजा दिलीप के बारे में कहा कि उनके राज्य में प्रजाओं को किसी प्रकार का कष्ट भोगना नहीं पड़ता था, क्योंकि कालिदास के अनुसार राजा वही होता है जो प्रजा का रंजन करता है–

'राजा प्रकृति रंजनात्'

ऐसे वैवस्वत मनु ने मानीषियों में अग्रगण्य थे वे पृथ्वी के राजाओं में उसी प्रकार माननीय थे जैसे वैदिक छन्दों में प्रणव

वैवस्वतों फनर्नाम माननीयो मनीषिणाम्
आसीन्मयही सितामाथः प्रणवश्छन्द सामिव।।

ऐसे महामनस्वी राजा के पास जो प्रणव के समान पूजनीयर थे, ऐश्वर्य की वर्चस्वता का कोई अभाव नहीं था। यज्ञादि कर्म का सम्पादन करते थे उसमें आत्मीक सुख तो होती थी किन्तु वंश परम्परा के न होने से उनका अंतकरण सर्वदा प्रयाकूल रहता था। यज्ञ में जो दक्षिणा का स्थान है वही स्थान महारानियों में सुलक्षणा का था। सुलक्षणा मगध की रहने वाली थी। राजा दिलीप चाहते थे सुलक्षणा के गर्भ में मेरे जैसा ही तेजस्वी पुत्र प्रादुर्भुत हो ताकि वह अपने पूर्वजों को जलांजलि के सके तर्पण कर सके किन्तु उनकी आकांक्षा पूर्ण महर्षि वशिष्ठ से अपने मनोदशा का निवारण किया और रहा कि मैं ससागरा पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट हूँ। किन्तु मेरा हृदय देश इसी प्रकार तमसतो में ग्रस्त हो जाता है जैसे सूयोदय काल में अनन्तवीर्य भगवान भास्कर के उदय होने पर पहाड़ी के जिस प्रदेश में सूर्य की किरणें प्रोद्‌भाषित होती हैं वह प्रकाशमय हो जाता है, किन्तु जहाँ सूर्य की प्रभास्वर किरणें प्रकाशित नहीं होती वह अंधकार से ग्रसित हो जाता है।

सर्वथा निराश होकर राजा दिलीप अपने पत्नी सुलक्षणा के साथ महर्षि वशिष्ठ के पास जा रहे थे। वहाँ जाकर सादर अभिन्दन–बन्दन कर अपने दुख विध्वल चित्त की भावनाओं को निवेदित किया और कहा कि मेरे पास तेजस्विता, ओजस्विता एवं वर्चस्वता तथा अपार धनवैभव विधमान है किन्तु पुत्र के न होने से ये सर्वथा निरर्थक हैं।

महर्षि वशिष्ठ ने ध्यान लगाया और कुछ काल के पश्चात् गुरु वशिष्ट ने बताया कि तुम अपनी पत्नी सुलक्षणा के साथ इन्द्र से मिलने गए थे, तुम्हारी पत्नी सुलक्षणा चार दिनों से रजस्वला हो चुकी थे और पुत्र की कामना में तुम पत्नी के साथ संभोग करना चाहते थे। मार्ग में बैठी कामधेनू की पूजा आपने नहीं की, कामधेनू की अभ्यर्थना आपने नहीं की तो अनादिता कामधेनू ने आपको अभिशप्त कर दिया है। अतः आप कामधेनू की पुत्री नन्दनी की पूजा–अर्चना समाहित चित्त से करें तो आप ही के समान तेजस्वी पुत्र आपको प्राप्त होता।

राजा दिलीप ने कहा कि अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे बाद हमें कोई पिण्ड देने वाला नहीं रह जाएगा। इसी दु:ख से हमारे पितर मेरे दिए हुए श्राद्धान्न को भरपेट न खाकर उसका अधिक भाग संचित करने लगे हैं।

नूनं मत्र परं वंश्या पिण्डविच्छेददर्शिनं

न प्रकामभुज: श्राद्धे स्वधासदग्रहततत्परा:।।

(रघुवंश।, 66)

दिलीप कहते हैं कि तर्पण के समय जब मैं जलदान देने लगता हूँ तक मेरे पितर यह सोचकर दु:ख की सांसे लेने लगते हैं कि मेरे पीछे उन्हें जल भी नहीं मिलेगा और वे उन उसौसों से गुनगुने जल को ही पी लेते हैं।

मत्परं दुर्लभ मत्त्वा नूनभावर्जित मया।

पय: पूर्वे स्वनि श्वासै कवोष्ण युपयुग्यते।।

महाराजा दिलीप कहते हैं हे गुरूदेव अपने हाथों प्रेम से सींचे हुए आश्रम के वृक्ष में फल न लगता देखकर जैसे आपको दु:ख होता है, वैसे ही जब मुझ कृपापात्र को सन्तानहीन देखते हैं तो आपको दु:ख क्यों नहीं होता ?

तयाहीनं विद्यातर्मा कथं पंश्यथ द्यसे।

सिक्तं स्वयांभिव स्नेहाद्वन्न्यमाक्षम वृक्षकम्।।

महाराजा दिलीप कहते हैं हे भगवन्। मेरे इस अंतिम (पैतृक) ऋण को उस प्रकार कष्टदायक समझिये जैसे बिना स्नान किया हुआ और खूँटे पर बँधा हाथी मर्मान्तक कष्ट अनुभव करता है।

अससपींडभगवन्नृणमन्त्यमवेहि ये।

अरून्तुदमिवालानम निर्वाणस्य दन्तिन:।।

कालिदास की अप्रतिम एवं महनीय रचना रघुवंश में जिस भारतीय संस्कृति का उल्लेख किया गया और पुत्र के प्रति जो अवधारणा व्यक्त की गयी है वह सर्वथा महत्वपूर्ण और स्पृहणीय है। श्राद्धपक्ष एवं जलाजंलि के लिए सुयेग्य, यज्ञ तेजस्वी व चरित्रवान पुत्र की कामना करते है ताकि वह गया जाकर पूर्वजों का पिंडदान एवं तर्पण कर सके।

विजिटिंग प्रोफेसर, नवनालन्दा महाविहार, नालंदा

सम्पर्क - अशोक नगर, गया

मोक्षभूमि गया स्थित विष्णुपद मन्दिर

डॉ० एस०एन०पी० सिन्हा

गया परमधाम मोक्षभूमि एक अन्तर्राष्ट्रीय तीर्थ स्थल है। अथर्ववेद में भी मगध का उल्लेख है। इस शहर को विष्णुनगरी भी कहा जाता है। यहाँ से पूर्व दिशा में वैद्यनाथधाम एवं पश्चिम में काशी विश्वनाथ धाम समान दूरी पर स्थित हैं। भगवान विष्णु ने गयासुर को सीधे स्वर्ग भेजने की दैवीय शक्ति प्रदान की थी। इसी विश्वास के कारण लाखों श्रद्धालु यहाँ अपने मृत संबंधियों के लिए श्रद्धा तर्पण करने आते हैं। कहते हैं कि प्राणी के मरने के बाद उसकी आत्मा को तब तक नहीं तृप्ति मिलती जबतक उसकी औलाद पितृपक्ष में पिंड-तर्पण न करे। इसीलिए अपने पितरों की शान्ति के लिए पिंडदान करते हैं। बिहार के गया में पिंडदान का खास महत्व है।

गया में पौराणिक आख्यानों के अनुसार पिंडदान करने से मुक्ति मिलती है। यहाँ विष्णुपद मन्दिर है जहाँ विष्णु के पद चिन्ह् हैं। कहा जाता है कि इसी कारण भगवान श्रीराम ने भी पिंडदान किया था। इन सब कारणों से विश्व के सभी भाग से यहाँ अपने पितरों की आत्मा की शक्ति-मुक्ति के लिए आते हैं और यहाँ के विष्णुपद मन्दिर में पिंडदान करते हैं।

फल्गु नदी के किनारे स्थित विष्णुपद मन्दिर भगवान विष्णु के पद चिन्ह् हैं। पत्थर पर बने इस 40 से.मी. लम्बे पद चिन्ह् को धर्म शिला कहा जाता है। यहाँ जो विशाल मन्दिर है उसका निर्माण इंदौर की रानी अहिल्याबाई होल्कर ने 1783 में करवाया था, लेकिन धर्मशिला का इतिहास बहुत ही प्राचीन है और धर्मग्रंथों में इसका उल्लेख है।

भगवान का सम्पूर्ण विग्रह ही भक्तों का उद्धारक हैं। पर विशेष रूप से तारक-उद्धारक चरणकमल ही सुगम, सुलभ और सुसेव्य है। यही कारण भक्तगण चरण शरण के आश्रम की आकांक्षा करते है अपनी मुक्ति के लिए। भगवान के चरण और चरण-चिन्ह् मंगलप्रद शान्ति के प्रदाता हैं। हमारे वैदिक ऋषियों ने चरणों की सेवा कर अमृत्व का साक्षात्कार किया है। **''विष्णोः पदे परमे मध्व् उत्सः।'' (ऋग्वेदः 1.154.5)** इस ऋणा पर आचार्यों ने भाष करते लिखा है विष्णु पद से मधु का क्षरण होता रहता है। इसके सेवन से जरा-जन्म-मरण आदि का भय समाप्त होता है।

प्रज्ञा चक्षु से महाकवि सूरदास भगवान के चरण कमलों में अलौकिक शक्ति-सामर्थ्य का दर्शन करते हैं। उनकी उद्भावना है।

''चरण कमल वंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै को सब कुछ दरसाई।।
बहिरो सुनै मूक मुनि बोले रकं चले सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार वंदौ तिहि पाई।

इस चरण-प्रेम करने से जीव भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है।।

कर्मयोगी गीधराज को भगवान् के चरण-चिन्हों के स्मरण मात्र से मुक्ति मिली। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है-

''आगे पद गीधपति देखा। सुमरित राम चरण जिन्ह रेखा।''

यहाँ के प्रमुख वेदियों में वैतरनी कुंड, गोदावरी कुंड, ब्रह्मा सरोवर, रुक्मिणी कुंड, रामशिला, रामकुंड, धर्मकुंड, प्रेतशिला, गयासुर, देवघाट, ध्वजपद, गयाकुप आदि गया, अक्षयवट, पंचतीर्थ विष्णुपद, रामगया, सीमताकुंड, उत्तर मानुष, बोधगया आदि है जहाँ काफी संख्या में पिंडदान करते हैं।

इस अवसर पर लोग यहाँ अनुष्ठानों का भी अयोजन करते हैं। यहाँ हर वर्ष पितृपक्ष मेला का आयोजन किया जाता है जो भाद्र शुक्ल पक्ष की अनंत चतुर्दशी से शुरू होता है। 15 दिनों तक चलने वाले मेले में काफी भीड़ होती है। यूँ तो यहाँ सालो भर पिंडदान किया जा सकता है, पर मेला पितृपक्ष में ही लगता है। यह मंदिर गया रेलवे स्टेशन से करीब 3 कि.मी. की दूरी पर है। यह स्टेशन देश के प्रमुख रेलवे स्टेशनों से जुड़ा हुआ है।

वेदों में परतत्व परात्पर पुरूष का निरुपण जिन नाम रूपों से किया गया है, उनमें एक नाम 'विष्णु'। यह परब्रह्म है। समस्त शास्त्रों में भगवान विष्णु का महिमा गायन किया गया है। इन्हीं के स्वरूप हैं सभी अवतार।

सर्वव्याप्त और सर्वशक्तिमान भगवान विष्णु के एक हजार नाम हैं। महाकाव्य महाभारत के अनुशासन पर्व में इसका उल्लेख है। भीष्म पितामह वाणों की शय्या पर लेटी अपनी इच्छा मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे, तब उन्होंने एक हजार नाम युधिष्ठिर को बताये थे। डॉ० दत्तत्रेय होरकेर ने अपने एक लेख में एक श्लोकी विष्णु सहस्त्रनाम स्रोत मंत्र का उल्लेख किया है- यथा-

''नमो स्तवन अनंताय सहस्त्र मूर्तये,
सहस्त्र पादाक्षि शिरोरू बाहने।
सहस्त्र नामने पुरुषाय शाश्वते,
सहस्त्रकोटि युगधारिणे नमः।।''

इस एक श्लोक का प्रभाव उतना ही है, जितना कि संपूर्ण विष्णु सहस्त्रनाम स्त्रोत्त का है।

भगवान विष्णु का वंदना इस श्लोक से करता हूँ। अपने पूर्वजों की मुक्ति के लिए विष्णु उन्हें चरण शरण दें- एवं पूर्ण शान्ति प्रदान करें। उनसे करबद्ध प्रार्थना है।

सनातम धर्म की परम्परा के अनुसार हर मनुष्य को अपने पितरों की मुक्ति के लिए श्रद्धा तर्पण मोक्ष भूमि गया में करना चाहिए। यदि गृहस्थ साधन सम्पन्न न हो तो केवल साग-सब्जी से श्रद्धा तर्पण करने से भी पितर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि व्यक्ति नितान्त दीन-हीन हो तो दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके दोनों हाथों को उठा कर श्रद्धा पूर्वक अपनी व्यथा-कथा निवेदित कर देने से भी उनके पितर को तुष्टि मिलती है। श्रद्धा भाव से किये गये जल तर्पण से पितरों को मुक्ति मिलती है। मैं अपने पितरों को प्रतिदिन विष्णुचरण में श्रद्धा भाव तर्पण करता हूँ मुझे अति प्रसन्नता होती है। आप कीजिए नमामि विष्णु शिरसा चतुर्भुजम ॐ शान्ति, ॐ शान्ति, ॐ शान्ति।

बी-92, लोहियानगर, कंकड़बाग, पटना-20
पूर्व-कुलपति, पटना विश्वविद्यालय

गीता धर्म

डॉ० वेंकटेश शर्मा

भगवान श्रीकृष्ण के मुखकमल से नि:सृत सर्वशास्त्र-सारमयी गीता का श्रीगणेश 'धर्म' शब्द से हुआ है। इस कथन में अतिशयोक्ति लेश भी नहीं है कि जिन बातों को भगवान श्री वासुदेव ने शुद्ध विरत अर्जुन से उपदेश रूप में कहा है वे सब धर्म के ही अन्तर्गत या धर्म के उदात्ततम स्वरूप है क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है- ''इस धर्म्थं सम्वादमावयों:'' और अर्जुन भी धर्म सम्मूठचेता होकर उपदेशप्तार्थी हुआ था। क्या श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवादरूप में उपनिबद्ध गीता धर्मोपदेश है ?

अर्जुन धर्मासम्मूठचेता था ?और धर्मसम्मूठचित्त अर्जुन में धार्मिक चेतना का संचार कराना तात्कालिक आवश्यकता थी। इन तीन तथ्यों का विचारावगाहन से पूर्व धर्म के स्वरूप को हृदङ्गम कर लेना अप्तासङ्गिक नहीं होगा। शास्त्रों में धर्म की कई परिभाषायें मिलती हैं। जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को धारण करे वह धर्म है- ''धारणात् धर्म:''। वेदों तथा तन्मूलक शास्त्रों में जिसकी प्रेरणा की गई है वह धर्म है अर्थात् वेदादि शास्त्रप्ततिवादित कर्म करना और उनके द्वारा निषिद्ध कर्मों का न करना धर्म है- ''चोदनालक्षणोडर्थ: धर्म:''। जिससे लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति हो वह कर्मानुष्ठान धर्म है- ''यतोच्युदय नि:श्रेयस सिद्धि: सधर्म:''।

आज विश्व में राष्ट्र, समाज धर्म, मानवधर्म, आपद्धर्म आदि विभिन्न धर्मोकी चर्चायें होती हैं लेकिन धर्म दस, बीस, सौ, दो सौ नहीं होते हैं। जैसे अग्नि का धर्म है उष्णता, जल का धर्म है- शीतस्पर्श। उसी प्रकार मनुष्य का भी एक ही धर्म है। अग्नि की उष्णता जैसे गति, शक्ति या प्रकाश के रूप में प्रकट होती है तथा उसकी आकृति और प्रभाव में देश-काल-परिस्थिति के अनुसार विभिन्नता पायी जाती है। वैसे ही देश-काल और पात्र के अनुसार धर्म के भी स्वरूप में भेद होते हैं। ऐसी परिस्थिति में धर्म का स्वरूप क्या है यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। प्राणिमात्र की समस्त चेष्टायें शाश्वत् सुख की सम्प्राप्ति तथा दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति को लक्षित कर होती हैं। अत: ''दु:खहीन शाश्वत सुख पाने का भ्रान्तिहीन प्रयत्न ही धर्म है''। पुरुष (मनुष्य) मात्र की चेष्टाओं से प्रार्थत (अभिलषित) तत्त्व को ही वेदादि शास्त्रों के अनुशीलन-शील मनिषियों ने चतुर्धा विभक्त कर धर्म-अर्थ, काम और मोक्ष शब्द से अभिहित किया है।

इन पुरुषार्थों के परिगणन क्रम में प्रथम स्थानापन्न धर्म तथा चतुर्थ स्थानापन्न मोक्ष (ईश्वरप्राप्ति) ही साधन और साध्य के रूप में प्रधान हैं। धर्म के नियन्त्रण में सेवित अर्थार्जन तथा विषयमोगेच्छा लौकिक समृद्धि तथा सुख साधन का सेवन कराते हुये मोक्ष-ईश्वर प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कराते हैं, लेकिन धर्मसाधन की, अर्थ और काम में गौणसाध्यता ही शास्त्रवांछित है। मुख्य साध्यता तो मोक्ष की ही है। पुरुषार्थत्रय का साधनयूत प्रथम पुरुषार्थ धर्म देश काल परिस्थिति तथा पात्रानुसार आपातत: कई स्वरूपों में परिलक्षित होता है लेकिन इन स्वरूपों से प्राप्त साध्य की एकता के कारण वह एक ही है।

ध्यातव्य है कि देश, काल, पात्र एवं परिस्थिति के अनुसार धर्माचरण का निर्धारण एक परिपक्व एवं परिष्कृत मन-बुद्धि समन्वित प्राज्ञ पुरुष ही कर पाता है। क्योंकि धर्म का निर्णय- यथार्थज्ञान करना एक दु:साध्य कार्य है- ''धर्मस्य गहनागति:''। जिसका युद्ध विरत अपरिपक्व एवं अपरिष्कृत मन-बुद्धि समन्वितचित्त अर्जुन में नितान्त अभाव है क्योंकि धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में न्यायार्थ अन्याय के विरुद्ध होने वाले युद्ध रूप धर्मकार्य सम्पादनार्थ वह उपस्थित तो हुआ, लेकिन मन-बुद्धि की अपरिपक्वता तथा परिष्काराभाव के कारण अपने पूज्यगुरुजनों तथा पारिवारिक जनों को देखकर शोकाकूल हो गया। सघन मोह रूप मेघ ने उसके विवेक सूर्य को आच्छादित कर दिग्भ्रान्त कर दिया।

फलत: वह कर्त्तात्याकर्त्तव्य विवेकरहित हो- ''अयोत्स्ये''- युद्ध नहीं करूंगा ऐसा कहता हुआ, धनुष-बाण का परित्याग कर रथ के पीछे चला गया।

वह अपनी युद्ध विमुखता के समर्थन में जगत्गुरू श्री कृष्ण के सम्मुख धर्म की रक्षा की दुहाई में तर्कपूर्ण सम्भाषण करने लगा, जो पूर्णत: अधर्म में धर्म की प्रतीति रूप धर्माभ्यास (धर्म-विषयक अज्ञान) ही कहा जा सकता है। जिसका खण्डन भगवान श्री कृष्ण ने अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम, अकीर्तिकरम् इन तीन ही शब्दों में किया है। जैसे- व्यक्ति और राष्ट्र को उन्नति पथ पर अग्रसर करने के लिए दण्ड और पुरस्कार सर्वमान्य नीतिसम्मत व्यवस्था है वैसे ही मानवमात्र को लौकिक अभ्युन्नति तथा पारलौकिक सुखसम्प्राप्ति के साधन रूप धर्मज्ञान के ज्ञान का प्रयोजक शास्त्रोपदेश विधि-निषेधमय है। वेदादि शास्त्रों के द्वारा

प्रतिपादित कर्म, धर्म तथा वर्जित कर्म अधर्म का प्रयोजक माना गया है। नैषर्गिक रूप से शास्त्रसम्मत कर्मों का आचरण गया शास्त्रविरूद्ध कर्मों का वर्णन करने वाले लोगों को शास्त्रकारों ने 'आर्य' शब्द से अभिहित किया है। उनके आचरण के विरूद्ध परम्परा को भंग करने वाले कार्य अनार्यजुष्ट कहे जा सकते हैं। मंद वैराग्य या अकर्मण्यता और संसार से उदासीनता शास्त्रसम्मत या आर्यजुष्ट (सेवित) धर्म नहीं हो सकते। अर्जुन की उपयुक्त प्रवृत्ति पर भगवान श्री कृष्ण ने अस्वार्ग्यं शब्द से आक्षेप किया है। सुखयोग की प्रबल अभिलाषा से शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान को 'स्वर्ग' कहा है। इस अनुष्ठान से चिरकाल तक स्वर्गी सुखों की प्राप्ति होती है।

युद्धविमुख अर्जुन पर भगवान श्री कृष्ण ने तीसरा आक्षेप अकिर्तिकरम पद से किया है। वह कठिन कार्य- जो किसी से न हो सके उसे सफलता पूर्वक करना यश: प्राप्ति का प्रयोजक माना है, ऐसे कर्मों के अनुष्ठान से जीवन काल में यश की प्राप्ति होती है और करने के बाद वही 'कीर्ति' शब्द से जाना जाता है। यदि निष्कामभाव न हो और निवृत्ति मार्ग का अनुसरण न हो सके तो मनुष्य को स्वर्गकामी होना चाहिए और यदि स्वर्ग प्राप्ति के साधन भी उपलब्ध न हो तो कम से कम इस संसार में जीते-जी यश प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। मृत्यु तो अवश्यम्यावी है। अत: ऐसे कर्म का अनुष्ठान करता हुआ शरीर का परित्याग करे जिससे यश तथा कीर्ति की रक्षा की जा सके। अत: भगवान श्री कृष्ण ने अपने उपदेश के माध्यम से धर्मविरूद्ध अनार्यजुष स्वार्थ तथा अकीर्तिकर मन्द युद्ध विरति रूप वैराग्य का परित्याग कर आर्यो के द्वारा सेवित, स्वर्ग का प्रयोजक और संसार में कीर्तिकर स्वर्णोचित परम्परा प्राप्त न्यायार्थ अन्याय के विरूद्ध युद्ध की प्रेरणा दी है।

भागवती गीता देश, काल, पात्र तथा परिस्थिति के अनुसार आचरणीय कर्त्तव्य कर्म तथा वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान तथा निषिद्ध कर्मों की वर्जना को आदर्श धर्म मानती है। अर्जुन परिस्थिति प्राप्त कर्त्तव्य कर्म युद्ध को हिंसा (अधर्म) तथा युद्ध विरति अकर्त्तव्य कर्म को ही धर्म मानकर युद्ध विमुख हो रहा था। वह स्ववर्णोचित क्षात्र (न्यायार्थ अन्याय के विरूद्ध किया जाने वाला युद्ध) धर्म का परित्याग कर ब्राह्मण धर्म का आचरण करता हुआ विधर्मी बन रहा था। श्रृत्यादि के द्वारा उपदिष्ट धर्म से इतर धर्म को अधर्म कहते हैं उसका समाश्रयण लौकिक सुख-समृद्धि तथा पारलौकिक सुख नि:श्रेयश का बाधक होता है, इसके विपरीत स्व वर्ण या आश्रम धर्म का देश-काल परिस्थिति तथा पात्र के अनुरूप समाश्रयण परम शांतिदायक होता है। एतदर्थ अनुष्ठित कर्म में शरीर का नाश भी श्रेयशकर माना गया है।

''स्वधर्मे निधनं श्रेय:
परधर्मो भयावह:।।

भगवती गीता का तात्पर्य व्यक्ति की पात्रता, समय, स्थान तथा कार्य के अनुसार धर्मस्वरूप नि:श्चय करने में है। जो कार्य एक के लिए विहित धर्म ही है वही दूसरे के लिए अधर्म भी सम्भव है। किसी के लिए वेदपाठ अधर्म है तो किसी के लिए वेदपाठ कर परित्याग अधर्म हैं। न तो कोई कर्म सर्वथा हेय है न कोई कर्म सर्वथा उपादेय है कार्यों की हेयता या उपादेयता का रहस्य देश, काल, पात्र तथा परिस्थिति के अनुसार उसके उपयोग में है।

अत: कोई भी व्यक्ति शास्त्रनुमोदित अपने-अपने वर्ण धर्मों एवं आश्रम धर्मों का देश, काल, पात्र तथा परिस्थिति के अनुसार समाश्रयण कर ऐहिक अभ्युन्नति तथा पारलौकिक दु:ख विगलित सुख भोग अर्थात् अर्थ, काम और मोक्ष को 'धन्यतम' बना सकता है।

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से हम इस निश्चय तक पहुँचते हैं कि अर्जुन मोहरूपनिविड अज्ञानान्धकार से आच्छन्न हो कत्तव्याकर्त्तव्य विवेक शून्य हो गया था उसमें कर्त्तव्य कर्म का बोध कराकर धार्मिक चेतना का संचार कराना तात्कालिक आवश्यकता थी। एतदर्थ सर्वशास्त्रसार स्वरूप गीतामृत का दोहन कर संसार सागर में अनादिकाल से गोते खाते हुए प्राणियों को सांसारिक जीवन में अर्थ-काम का सेवन कराते हुये दुर्भभ धर्म साधन रूप अमृतमयी संजीवनी की आवश्यकता थी, जिसकी आपूर्ति एक योग्य वरस (शिष्य) को माध्यम बनाकर गोपाल श्रीकृष्ण ने कर दी-

सर्वोपनिषदोगावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधींभोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

''श्री कृष्णार्पणम् अस्तु''

प्राध्यापक, आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, हुलासगंज, गया

मनुस्मृति में श्राद्धकर्म-व्यवस्था

श्री जियालाल आर्य

ऋग्वेद के दशम मंडल और मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में मनुष्य की उत्पत्ति की नहीं, वर्णोत्पत्ति का उल्लेख किया गया है, जिसमें कहा गया है कि, ''संसार के विकास के लिए मुख, बाहु, जंघा और चरण से क्रमशः (ब्रह्मा ने) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को उत्पन्न किया। ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो भाग कर आधे से पुरुष और आधे से स्त्री बनाकर उसमें विराट पुरुष की (मैथुन कर्म से) सृष्टि की।'' (मनुस्मृति 1/31-32) इन पुरुषों और स्त्रियों को चार वर्णों में कैसे बाटा गया, यह स्पष्ट नहीं किया गया। हिन्दू समाज में आदमियों को उनके गोत्र या पितर से उनकी उत्पत्ति का स्रोत जाना जाता है। इस सम्बन्ध में भी मनुस्मृति के विराट पुरुष ने तपस्या द्वारा 'प्रजाओं' के पति दश महर्षियों को उत्पन्न किया। इससे यह आभास मिलता है कि दश महर्षियों के पैदा होने के पूर्व 'प्रजा' का आस्तित्व था। ये दश महर्षि थे- मारीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलत्स्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ट, भृगु और नारद। इन ऋषियों को हिरण्यगर्भ के पुत्र मनु से उत्पन्न माना गया है। इन प्रदीचि आदि ऋषियों के पुत्र ही 'पितर' कहे गये हैं :- (मनुस्मृति 3/194)

विराट के पुत्र सोमसद साध्यगण अर्थात् आदमियों के पिता हैं। मारीचि के पुत्र अग्निदाता देवताओं के पितर हैं। अत्रि के पुत्र वर्हिषद दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्म, नाग, राक्षस, सुपर्ण और किन्नरों के पितर हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दैत्य, दानव, नाग और राक्षस आदि मनुष्य थे, मनुष्येतर नहीं।

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
सुपर्णकिन्नराणां एव स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः।। (मनु 2/196)

ब्राह्मणों के पिता सोमप, क्षत्रियों के हविष्मंत, वैश्यों के आज्यष और शूद्रों के सुकालिन है। सोमप भृगु के, हविष्मन्त अंगिरा के , आज्यप पुलत्स्य के और सुकालिन वशिष्ठ के पुत्र हैं। (मनु 3/197-198)

सोमप के अतिरिक्त अनग्निद्ग्ध काव्य, वर्हिषद आदि को भी ब्रह्मणों का पितर माना गया है। इसका तात्पर्य हुआ कि ब्राह्मणों के एकाधिक पितर या गोत्र हुए जबकि अन्य वर्णों के पितर का स्त्रोत मात्र एक ही है। दूसरी बात यह है कि सभी मनुष्यों के पितर ऋषि ही हैं। सभी ऋषि बराबर के पद पर आसीन होते हैं उनमें ऊँच-नीच का वर्गीकरण नहीं है। तब चार वर्णों में ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा कहने को कोई कारण नहीं है। सभी आदमी समान है तो शूद्रों के वर्ण का निर्धारण जन्म से ''शूद्राणामेव जन्मत'' कहने का कोई आधार और औचित्य नहीं है।

सृष्टि के आरम्भ से लेकर आजतक अनगिनत पीढ़ियां उत्पन्न हो गई। सभी वर्णों में आपसी मिश्रण या वर्ण शंकर इतना अधिक हो गया है कि कौन सा वर्ण और जाति किस ऋषि से उत्पन्न हुई, यह निर्धारण करना कठिन हो गया है। इसीलिए आज सभी वर्णों के लोगों को अपने पितरों की आत्मशांति के लिए मनुस्मृति में श्राद्ध और पिण्डदान की व्यवस्था की गई है। श्राद्ध कर्म में भी ब्राह्मणों को महत्त्व दिया गया है। ब्राह्मण श्राद्ध कर्म कराता है, श्राद्ध का हव्य और कव्य उसी को मिलता है। ऐसी व्यवस्था शायद इसलिए की गई होगी क्योंकि ब्राह्मण ही पढ़े-लिखे होते थे और लोगों को शिक्षा वर्जित थी। 'शुद्राय मति न दद्यान।'

मनुस्मृति में ब्राह्मण' को भी परिभाषित किया गया है। ब्राह्मण ही श्राद्ध करने-कराने का, दान ग्रहण करने का, श्राद्धभोजन करने का अधिकारी होता है। ब्राह्मणों का कर्म है पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना आदि। ब्राह्मणों के लिए 'आचारः परमो धर्मः' युक्त होना कहा गया है। ब्राह्मण को 'देव विद्या' युक्त होना चाहिए। देव विद्या विहीन ब्राह्मण को भोजन कराने से श्राद्ध का फल नहीं मिलता है। यज्ञ भी कहा गया है कि 'वेद विद्या रहित ब्राह्मण हव्य-कव्यों के जितने कौर खाता है श्राद्धकर्त्ता के मरने पर उसे उतने ही 'तपाये शूलर्ष्टि' नाम के लोहे के गोले खाने पड़ते हैं।

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्।
तावतो ग्रस्ते प्रेत्य दीप्तशूलष्ठर्ययोगुडान्।। मनु 3/133

बेद विज्ञ ब्राह्मण को विधिपूर्वक दी जाने वाली दान-दक्षिणा इस लोक और परलोक में दाता और प्रतिग्रहीता दोनो को फल देती है।

वेदज्ञान रहित ब्राह्मण को हवि या देवान्न नहीं देना चाहिए, क्योंकि ऐसे मूर्ख को हवि देने वाले को वैसे ही कोई फल नहीं मिलता जैसे ऊसर भूमि में बीज बोने वालों को फल का लाभ नहीं मिलता है-

यथेरिर्णो वीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथाऽनृचे हविर्दत्वा न दाना लभते फलम्।। मनु 3/142

मनुस्मृति में बार-बार कहा गया है कि श्राद्ध का भोजन वेदज्ञ, ऋचाओं को जाननेवाले और जिस ब्रह्मण ने सम्पूर्ण वेद या उसकी कोई शाखा पूरी तरह पढ़ी हो, को कराना चाहिए। ऐसा करनेवाले श्राद्धकर्त्ता के पितरों की सात पीढ़ियों तक निरन्तर तृप्ति होती है। ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्धान्न न खिलाएं जो अजितेन्द्रिय हो, जुआरी हो, वणिक वृति अर्थात् व्यापार से जीवनयापन करता हो, जिसके नख खराब हो, जिसके दांत काले हो या गुरू की आज्ञा के प्रतिकूल चलने वाला हो, रोगी हो, पशुओं को पोसकर गुजर करने वाला हो आदि। (मनु 3/152 से 154)

आजकल यह शायद सम्भव नहीं है क्यों कि जाति या जन्म से उत्पन्न ब्राह्मण लोग इन सभी कृत्यों में संलग्न है। वेद ज्ञाता या पढ़ने-पढ़ाने वाले बहुत कम ब्राह्मण मिलेंगे। आज ब्राह्मण की परिभाषा ब्राह्मण परिवार में जन्में लोगों तक सीमित हैं पढ़ने-पढ़ाने वाले सभी वर्णों और जातियों में मिलेंगे। आज की परिस्थितियों में ब्राह्मणों के अलावा सभी ऐसे लोगों को आमंत्रित किया जाता है जिसका चरित्र, आचरण अच्छा हो और वह अधीत हो।

श्राद्ध का स्थान पवित्र और निर्जन (शुचि देशं विविक्तं) होना चाहिए। ऐसे स्थान को गोबर से लीपना चाहिए जिससे स्थान पवित्र हो जाय। पिण्डा पारने का स्थान दक्षिण की ओर और ढालुआ होना चाहिए। ''दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपाद्येत।'' और गोमयेनोपलेपयेत।'' श्राद्धकर्म या पिण्डदान उपवन या बन की पवित्र भूमि में नदी तट पर या निर्जन स्थान में करने से पितर सदा सन्तुष्ट होते हैं।

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतरेषु हि।
विविनतोषु च तुष्यन्ति दत्तेत पितरः सदा।। मनु 3/207

गया में फल्गु नदी की तट पर ये सभी सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं, इसीलिए पिण्डदान करने के लिए गया का विशेष महत्त्व है। ऐसी मान्यता है कि गया में पिण्डदान करने से पितरों को तथा कर्त्ता को भी मोक्ष की प्राप्ति अर्थात् सदा के लिए तृप्ति मिल जाती है। प्रागैतिहासिक काल से ही गया में पिण्डदान की महत्ता बनी हुई है। त्रेतायुग में भगवान राम के गया आगमन और उनके द्वारा पिण्ड पारने का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर पिण्डदान करने के लिए केवल देश के ही नहीं अपितु विदेशों से भी लाखों सनातनी धर्मानुयायी आते हैं। अब तो विदेशी सनातनेतर लोग भी अपने पितरों के मोक्ष लिए पिण्डदान करने भादो के शुक्ल पक्ष में आने लगे हैं। गया में फलगू नदी तट के अतिरिक्त विष्णुपद मंदिर और अक्षयवट के पास पिण्डदान किया जाता है।

श्राद्धकर्म एवं पिण्डदान का कर्म प्राय: सभी पवित्र नदियों के तट पर, शांत उपवनों में और सिद्ध मंदिरों के परिसरों में किया जाता है; परन्तु गया में पिण्डदान का विशेष महत्त्व है क्योंकि यहाँ पर पिण्डदान करने से पूर्वजों की सात पीढ़ियों को सदा के लिए मोक्ष मिल जाता है।

भा.प्र.से. (सेवानिवृत्त)
''आर्य निवास''
23, आई.ए.एस. कॉलोनी
किदवईपुरी, पटना-1 (भारत)

मीरा बाई होने का अर्थ

डॉ० वंशीधर लाल

मीरा बाई का जन्म 1504 ई० में जोधपुर के राठौर खानदान में हुआ था और विवाह 1516 ई० में उदयपुर के सिसोदिया खानदान में महाराणा सांगाजी के कुँवर भोजराज के साथ हुआ था। दो वंशों में प्रकट ''तरले पावनी लोक-लीला'' का अर्थ साम्य मीरा के साथ सार्थक प्रतीत होता है। राजस्थान के शौर्य का पानी तलवार पर तो उतरा, किन्तु वहाँ की भूमि पानी के बिना रेगिस्तान में बदल गयी। उसी मरुप्रदेश में मीरा का जीवन और काव्य कृष्णभक्ति और प्रेम की मंदाकिनी बन कर फूट पड़ा। कहते हैं कि स्वप्नावस्था में ही कृष्ण की परिणीता बनी राजकुल की मीरा ने स्पष्ट कहा- 'म्हारां री गिरिधर गोपाल दूसरा णां कूंयां'। मीरा ने अपने जीवन में सदैव निर्भीकता और साहस का परिचय दिया। कुँवर भोजराज से विवाह के कुछ ही वर्ष बाद उन्हें पति-वियोग हो गया। उस काल की प्रथा के अनुसार उन्हें सती होना था, किन्तु उन्होंने इस प्रथा को अस्वीकार किया और स्त्री के स्वातंत्र्य और विद्रोही की मशाल जलाने में सफल हुई।

भक्ति प्रवाह के उस स्वर्णकाल में कबीर, सूर, रैदास आदि के अनुयायियों और रामानंदी साधुओं की वाणी गूँज रही थी। स्वयं मीरा की पितामही सास संत रैदास की शिष्या थी। उनपर इन संतों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, किन्तु अपने निर्बन्ध व्यक्तित्व के कारण मीरा न तो किसी फर्म-सम्प्रदाय की अनुगामिनी बनीं और न ही उन्होंने किन्हीं की दीक्षित शिष्या बनना स्वीकार किया। वह तो ''मोर मुकुट मधकराकृत कुंडलधारी मुरली मनोहर'' की अनुपम रूप-माधुरी पर न्योछावर थी।

मीराबाई द्वारा रचित कुल ग्यारह कृत्तियों का उल्लेख मिलता है, किन्तु 'मीराबाई की पदावली' को छोड़कर शेष रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है। निम्नांकित रचनाओं को मीराबाई रचित कहा जाता है।

1.नरसी जी रो माहेरो (नरसी जी का मायरा या नरसी जी का माहरा, 2. गीत गोविन्द की टीका, 3. राग गोविन्द,

4. मीराबाई का राग मलार (मल्हार), 5. राग सोरठ पद संग्रह, 6. गरबागीत, 7. सतभांमानूं रूशाणां, 8. नरसिं मेहता नों हुंडि, 9. मीराबाई की पदावली- सं० डॉ० भगवानदास तिवारी, 10. राग विहाग, 11. फुटकर पद (मीरा आदि दस भक्तों के पदों का संग्रह)।

आचार्य ललिता प्रसाद मुकुल और डॉ० भगवानदास तिवारी ने बड़े श्रम से गहन-छान-बीन और अनुसंधान के आधार पर 'डाकोर' (गुजरात) और काशी की प्रतियों से प्राप्त कुल 103 पदों को ही प्रामाणिक माना है, और बताया है कि ब्रजभाषा, गुजराती, पंजाबी, बंगला, बिहारी उड़िया आदि भाषाओं में प्रचलित पद परवर्त्ती और मीरा भक्तों एवं पद-गायकों द्वारा गृहीत हैं, अत: वे प्रक्षिप्त हैं। ऊपर वर्णित 103 पद मीरा की प्राचीनतम पाण्डुलिपियाँ हैं।

मीरा की लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए अनेक विद्वानों ने उकसे व्यक्तित्व और व्यतित्व पर प्रकाश डाला है, यथा- डॉ० श्रीकृष्ण लाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', डॉ० छोटेलाल प्रभात आदि। ध्रुवदास की 'भक्तनामावली' के अनुसार मीरा कृष्ण प्रेम के वशीभूत होकर अपनी सखी और दासी ललिता को गृह-त्याग करने पर उसे साथ वृन्दावन और डाकोर (गुजरात) तथा द्वारका तक ले गयी थीं। उसी ने मीरा के पदों को लिपिबद्ध किया था। कुछ विद्वान मीरा का तुलसीदास से पत्राचार की कथा कहते हैं और यह भी जोड़ते हैं कि मीरा को घर-त्यागने का संदेश तुलसीदास ने यह कहकर दिया था-

''जाके प्रिय न राम बैदेही।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।''

किन्तु यह उद्भावना कपोल-कल्पित है, क्योंकि मीरा का स्वर्गवास सन् 1603 में हो गया था। अत: सन् 1616 में तुलसी से पत्र-व्यवहार सर्वथा असंभव है।

बहरहाल, मीरा ने सहा अधिक है, कहा कम। मंसूर की फाँसी और मीरा का विषपान एक ही श्रेणी की परीक्षाएँ हैं, जिसमें

मीरा खरी उतरी हैं। मंसूर प्राण देकर भी अपने सिद्धान्त से नहीं डिगे और मीरा को विष भी साधना-पथ से विचलित नहीं कर पाया। वह अपने गिरिधर नागर की थीं और गिरिधर नागर उनके इतने अनन्य थे कि अपनी आराधिका को पूर्णत: अपने विग्रह रूप में आत्मसात् कर लिया। द्वापर की राधा ही मीरा बनकर अवतीर्ण हुई थीं। भक्त-प्रवर नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में मीरा की अनन्य भक्ति पर मुग्ध होकर लिखा है-

''सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहि दिखायो।
निरअंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो।।
दुष्टन दोष विचार मृत्यु को उद्दिम कीयो।
बार न बाँका भयो गरल अमृत ज्यों पीयो।।
भक्ति निसान बजाय के काहू ते नाहिन लजी।
लोक-लाज कुल श्रृंखला, तजि मीरा गिरिधर भजी।।''

वस्तुत: मीरा साधना से सिद्धि तक की आध्यात्मिक यात्रा में पार्थिव से अपार्थिव की ओर उन्मुख हुई हैं। इस यात्रा के प्रमुख सोपान हैं- रोष और करुणा, विराग, दैन्य और दास्य तथा अनन्य प्रेम। उन्होंने साधु-संतों के साथ बैठकर सत्संग और कृष्ण-भक्ति का आश्रय लिया तो परिजनों के घोर विरोध के कारण उनमें रोष जगा, फिर उस पर विजय पायी। संसार की क्षणभंगुरता और नश्वरता की अनुभूति के कारण उनके हृदय में करुणा का उद्रेक हुआ और वे कृष्णानुराग में लीन होती गयीं। आर्त्त भाव से अपने आराध्य से प्रार्थना के स्वर में अजामिल, गजराज, भीलनी आदि के उद्धार का वर्णन कर उन्होंने दैन्यभाव प्रकट किया। संसार उनसे छूटता गया और कृष्ण-साधना में आस्था बलवती होती गयी। यही आर्त्तभाव श्रद्धा और फिर समर्पण जन्य प्रेम में रूपान्तरित हो गया। यही प्रेम मीरा की साधना, उनके जीवन और काव्य का साध्य बन गया। वे प्रेम-पथ पर इतना आगे बढ़ चुकी थीं कि लौटना असंभव था। रूप-रस-मुग्धा संयोग-सुख के मनोरम लोक में विचरने लगीं। मिलन की क्षणिक आश्वस्ति के बाद प्राप्त कल्पव्यापी विरह की अनन्त पीड़ा को मीरा ने अनेक पदों में अभिव्यक्ति किया है और यही उनके मीराबाई होने का अर्थ है। यह अर्थ उनकी निम्नांकित पंक्तियों में और भी स्पष्ट परिलक्षित होता है-

''म्हारो जणम-जणम को शाथी, थाणे ना विशर्‌यां दिण राती।
थां देख्यां विण कल ना पड़तां जाणे म्हारी छाती।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि पंथ निहारयां कलपत अखयां रांती।
भो सागर जग बंधण झूठां झूठां कुल रां ण्याती।
पल-पल थारा रूप निहारां णिरख णिरख मदमांती।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर हरि चरणां चित रांती।।''

और- ''दध मथ धृत काढ़ लयां डार दयां छूयां।
राणा विषरो प्याला भेज्यां पीय मगण हूयां।
अब तो बात फैल पड्‌या जाण्यां सब कूयां।
मीरां री लगण लग्यां होणा हो जो हूयां।''

ऐसी थीं मीरा। प्रेममूर्त्ति मीरा आण्डाल की तरह अपनी पराभक्ति द्वारा अपने आराध्य श्रीकृष्ण के विराटत्व में एकाकार हो गयी थीं।

मानविकी संकायाध्यक्ष
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

गया श्राद्ध : परंपरा और प्रकर्ष

डॉ० रामकृष्ण

गयाधाम पितरों की मुक्ति का सर्वथा प्रामाणिक तीर्थ है जहाँ विश्व के प्रायः देशों से प्रवासी सनातनी अपने पितरों की तृप्ति एवं मुक्ति के लिए यहाँ आकर श्राद्धकर्म सम्पन्न कर स्वयं भी संतुष्ट हो जाते हैं। मोक्ष-प्राप्ति के लिए पुत्रों के द्वारा किया गया कृत्य सर्वाधिक पुणप्रद माना गया है। पुत्र का प्रधान कार्य भी यही है। इसी लिए कहा गया है- ''पुं नाम नरकात् त्रायते यः स पुत्रः'' अर्थात् जो अपने पिता सहित पूर्व पुरुषों को उनकी अधिभौतिक कष्टप्रद यातना से मुक्ति दिलाए वही पुत्र कहलाने का अधिकारी है। पितर पितृपक्ष में अपने पुत्रों किंवा वंशजों की खोज करते हैं। अतृप्त पिता पंद्रह दिनों तक यानि अश्विन कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक प्रतीक्षा पूर्वक गयाजी के श्राद्धक्षेत्र में अपने-अपने वंशजों का अन्वेषण करते हैं कि शायद कोई वंशज गयाजी आकर फल्गु के पवित्र जल से तर्पण करे अथवा पिण्डदान करे। परन्तु जब अमावस्या तक उनका तृप्त्यर्थ भाग उन्हें प्राप्त नहीं हो पाता तो निराश हो जाते हैं।

श्राद्ध का संबंध श्रद्धा से है- ''श्रद्धया क्रियते इति श्राद्धभू।'' अर्थात् श्राद्धकर्म वही कर पाते हैं जिनमें अपने पितरों के प्रति श्रद्धा का भाव होता है।

कभी-कभी प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि गया में श्राद्ध की परंपरा का आरंभ कब से है ?यह प्रश्न वास्तव में उतना ही जटिल है जितना सनातन धर्म। इतना तो सत्य है कि भारतीय आर्ष परंपरा की सीमा में सतयुग (कृतयुग) से लेकर वर्तमान युग तक श्राद्ध कर्म युग और समाज सापेक्ष रहा है। सम्प्रति गयासुर की कथा से जुड़ने पर इस धाम की औपचारिकता प्रतिष्ठा स्पष्ट होती है। साथ ही कुछ विद्वान इस क्षेत्र को वायनावतार से जोड़कर भी विचार करते हैं।

गयाधाम की विशेषता एवं श्राद्ध कर्म के लिए दिशा निर्देष वायुपुराण, मत्स्यपुराण, धर्मप्रदीप, शंखस्मृति, समृतिसार, पद्मपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण आदि ग्रंथों में प्रायः उल्लिखित है।

वायुपुराण के अनुसार गया में पितरों के लिए पिण्डदान से पिण्डदानियों को जो फल मिलता है उसका वर्णन करोड़ो कल्प में भी नहीं किया जा सकता।

''गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः।
न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटि शतैरवि।।

यही नहीं -

ब्रह्मज्ञानं गया श्राद्ध गोगृहे मारजं तथा।
वासः पुंसां कुरूक्षेत्र मुक्ति चतुर्विधा।।

अर्थात् मुक्ति के चार प्रकार है- ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशाले में मृत्यु और कुरूक्षेत्र में निवास।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में गया जी की महिमा का वर्णन करते हुए उल्लेख है कि फल्गु तीर्थ में स्नान, गदाधर भगवान के दर्शन तथा गयाजी की परिक्रमा से मनुष्य ब्रह्महत्या आदि के यक्ष पाप से मुक्त हो जाता है।

त्रेतायुग में भगवान राम लंकापति रावण का संहार कर अयोध्या लौटे। धूम-धाम से राज्याभिषेक हुआ। सब कुछ सामान्य हो गया फिर भी श्रीराम अपने मन की उद्विनता से त्रस्त रहे। एक दिन गुरुवशिष्ट के पास जाकर इन्होंने अपने मन की विकलत बतलाते हुए रावण वध के कारण ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्ति का उपाय जानना चाहा। तब गुरु वशिष्ट ने उन्हें गयाजी में फल्गु स्नान एवं पिण्डदान करने का परामर्श दिया जिससे ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मिल सकती थी। भगवान श्रीराम ने वैसा ही किया। सीता सहित भृगु आश्रम तथा दुर्वासा आदि ऋषियों को आश्रम के दर्शन करते हुए श्रीराम गया पधारते हैं, फल्गु स्नान, तर्पण तथा पिण्डदान से ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाते हैं।

आज भी रामशिला, रामगया, सीता कुण्ड आदि तीर्थ इसके प्रमाण हैं।

जिन्हें पुत्र की कामना है। अथवा प्रेतबाधा से पीड़ित हों उन्हें भी पिण्डदान के माध्यम से कामना की पूर्ति होती है।

''यो में प्रजां नाशयति जीवों नश्यति वा स्वयं।

तस्य काश्यपगोत्स्य वायुरूपस्य देहिनः।
प्रेतस्योद्धार विषये तस्मैं पिण्डं बदाम्यहम्।।

उपर्युक्त मंत्र द्वारा पिण्ड देने से प्रेत बाधा से मुक्ति मिलती है।

द्वापर युग में पाण्डवों का गया आगमन, युधिष्ठिर द्वारा धर्मारण्य में यज्ञपूर्वक दान कर्म की प्रसिद्धि आज भी लोगो की जिह्वा पर विराजती है।

बौद्धावतार के पश्चात् जगद्गुरु शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु, जयदेव, रामकृष्ण परमहंस आदि पूर्व पुरुषों एवं संतों के आगमन से गयाजी की आध्यात्मिकशीला को तीव्र ज्योति मिली है।

धर्माचार्यों ने मास के दो पक्षों को कृष्ण और शुक्ल नाम से अनिहित करते हुए कृष्ण पक्ष को पितरों के लिए तथा शुक्ल पक्ष को देवताओं के लिए विशेष रूप से संबद्ध किया है। यही कारण है कि गयाजी में तृपाक्षिक श्राद्ध का विधान अतिश्लाध्य माना गया है। यह संयोग भाद्रपद मास के शुक्ल चतुर्दशी तिथि से प्रारंभ होता है और आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को पितृकर्म का समापन हो जाता है। गरुड़ के पूर्व एकोदिष्ट श्राद्ध का विधान अत्यन्त श्रेयस्कर है। जिस वर्ष गया श्राद्ध के लिए गया यात्रा करनी हो उस वर्ष पितृपक्ष के पूर्व जिस मास तिथि में पिता या माता की जो पुण्य तिथि आती हो उस तिथि को अपने घर में एको दिष्ट श्राद्ध संपन्न कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् उपयुक्त समय आने पर भाद्र शुक्ल चातुर्दशी तिथि को पुनः पुना नदी में स्नान–तर्पण एवं पिण्ड सम्पन्न कर गया जी में प्रवेश करना चाहिए। यहाँ के तीर्थ पुरोहित गयापाल से अमावस्या के दिन श्राद्ध कर्म आरंभ करने संबंधी आदेश लेने के पूर्व उनकी चरण पूजा कर नारियल के साथ संकल्प करना चाहिए। आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक यथा स्थान तत्–तत् तीर्थों एवं पिण्डवेदियों पर पिण्डदान करते हुए आश्विन शुक्ल प्रतिपक्ष को गायत्री तीर्थ में श्राद्ध कार्म का समापन करते हुए आचार्य को दक्षिण कदेकर आशीर्वाद ग्रहण करना राष्ट्रीय विधान है।

यों तो गयाजी में पितृपक्ष चार हैं- चैत्, आश्विन पौष और ज्येष्ठ मास में संपन्न होने वाले पितृपक्ष। किन्तु आश्विन का शारदीय पितृपक्ष सर्वजन सुलभ तथा अत्यधिक ग्राह्य है। इसीलिए इस अवधि में यात्रियों की संख्या अन्य काल की अपेक्षा अत्यधिक होती है।

गयाजी की प्रशासनिक व्यवस्था भी केवल शारदीय पितृपक्ष को ही महत्व देती है। फलतः सत्रह दिनों तक प्रशासन की व्यस्वता, कानून व्यवस्था, चिकित्सा–व्यवस्था, पिरवहन जल एवं प्रकाश आदि के संबंध में काफी बढ़ जाती है।

शारदी पितृपक्ष की महनीयता को कई कारण हैं। संभवतः स्वतंत्रतापूर्व गयाजी में दूर–दूर से आवागमन की सुविधा का अभाव रहा है। भारतीय श्राद्धकर्मी प्रायः कृषक रहे हैं। अतः कृषि कार्य से समय मिलने के पश्चात् ही अन्य कार्यों पर ध्यान जाता है। आश्विन तक खेती के आवश्यक कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। एक माह तक कोई विशेष व्यस्तता नहीं होती साथ ही मौसम भी अनुकूल होता है। अतः इसी अवधि को सर्व सुलभ मान कर गया यात्रा का मन बनाते होंगे।

आज यहाँ गमनागमन की असुविधा नहीं है। रेल, सड़क के अतिरिक्त वायुयान की सुविधा भी गया जी आने वाले यात्रियों के लिए उपलब्ध है। पिण्डवेदियों पर जाने के लिए भी पैदल चलने की जरूरत नहीं। रिंग बस, औटो, रिक्शा, टमटम आदि सवारियाँ में विशेष अवधि का भाव नगण्य हो गया है।

यद्यपि वायुपुराण में गया श्राद्धकाल का उल्लेख करते हुए मीन, मेष, कन्या एवं कुंभ राशि स्थित सूर्य के समय श्राद्ध हेतु गयाजी का तीर्थ क्षेत्र अत्यन्त पुण्यप्रद माना गया है। फिर भी गयाजी में सभी समय पिण्ड देने के लिए विशेष निर्देश है।

''गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्यात् विचक्षणः।
अचिमासे जन्मदिने अस्ते च गुरु शुक्रयोः।।

इन दिनों देश, काल परिस्थिति जन्य विवशताओं के अनुरूप कार्य होने लगे हैं। भौतिकवादी विकासात्मक सोच के साथ नई तकनीकों का भी उपयोग होने लगा है शरीर से अशक्त, कुशासन पर बैठने में असघ्न महसूस करने वालों के लिए फाइवर निर्मित मचिया, मोढ़ो अथवा कुर्सी भी उपलब्ध करा दी जाती है।

जिन्हें सामान्य वातावरण में रहना कष्ट कारक लगता है, उनके अवासन के लिए वातानुकूलित आवास एवं आने जाने के लिए वातानुकूलित सवारियाँ भी सुलभ है।

आज कल लोग उच्च तकनीक पद्धति से पिण्डदान पर विचार कर रहे हैं। प्रवासी भारतीयों के लिए विवाद का विषय जरूर है कि क्या ऑनलाईन पिण्डदान हो सकता है ?यह तो ठीक उसी प्राकर है जैसे कोई माँ अपने बच्चे को ऑनलाईन मालिश कर दे, दूध पिला दे, कपड़े बदल दे आदि

मेरी दृष्टि में अभी तक यह व्यवस्था न तो शास्त्रीय है न ही सामाजिक सहमति के अनुरूप। यह बात अलग है कि यदि किसी वेश या कुल में कोई भी उत्तराधिकारी न हो। तब इस कार्य के कई विकल्प हैं। पर यदि उत्तराधिकारी गया आने के लिए वाध्य है।

यदि समय का अभाव है तो यहाँ एक दिन में भी पिण्डदान शास्त्र सम्मत है। अर्थात् एक दिन में तीन जगह पिण्डदान कर पुण्य प्राप्त किया जा सकता है।

प्राय: प्रति वर्ष सनातनी के अतिरिक्त अन्य धर्मानुयायी भी श्राद्ध करते देखे जाते हैं।

समाचार पत्रों में पितृपक्ष काल में प्रकाशित पिण्डदानियों के अनुभव स्पष्ट करते हैं कि किस तरह उन्हें शान्ति संतुष्टि एवं मनोरथ की प्राप्ति हुई। परिवार की सुख-समृद्धि में पिण्डदान का प्रभाव स्मरणीय है।

संज्ञायन, विष्णुपद मार्ग, करसीली, गया

पुण्य-तरु अक्षयवट

प्रो० डॉ० महेश कुमार शरण

अक्षय तृतीया, अक्षयनवमी और अक्षय भद्रा जैसे भारतीय पर्व-अनुष्ठानों की भांति गया तीर्थ में एक अक्षयवट है जिसकी गणना भारत देश के प्राचीन सप्तवट के अन्तर्गत की जाती है और इसकी महिमा अक्षुण्ण है।

गया का ऐतिहासिक व विशाल वट वृक्ष अक्षयवट के नाम से पुराण प्रसिद्ध है। कहने का आशय इसका क्षय अर्थात् नाश किसी काल में नहीं होता है और यह बारहो मास सदा हरा-भरा बना रहता है। गया का वैदिककालीन यह तीर्थ युगपिता ब्रह्मा जी से सूत्र सम्बद्ध है जिसकी प्रतिष्ठा प्रभविष्णु की पुनर्स्थापना रामायणकाल में प्रभु राम, सीता व लक्ष्मण के गया आने पर सम्पन्न हुई। इस दृष्तांत का वर्णन विवेचन वायुपुराण, आनन्द रामायण गरूड़ पुराण व गया माहात्म्य में भी किया गया है।

महाभारत काल में भी गया देशीय तीर्थों में अक्षयवट की प्रतिष्ठा स्थापित रही। इस काल में गया आए धौम्य ऋषि व लोमश ऋषि ने अपनी कृतियों में गया के इस अक्षयवट की प्रशंसा की है। भगवान बुद्ध के जमाने में भी गया का अक्षयवट फलता-फूलता रहा। इसी कालक्रम में गया क्षेत्र के बोधिद्रुम की महत्ता के उजागर होने के बावजूद भी अक्षयवट में धर्मप्रेमियों का आगमन बना रहा।

अक्षयवट में लगे मूर्त्त शिल्यों में प्रारम्भिक कृतियों गुप्तकालीन हैं। इससे स्पष्ट होता है कि गुप्काल तक गया में अक्षयवट के भवन निर्मित हो गए थे, जिसको नय रूप पाल काल में प्राप्त हुआ। 'गया तीर्थ की पिण्डवेदियाँ- एक ऐतिहासिक अध्ययन' में डॉ० राकेश कुमार सिन्हा 'रवि' लिखते हैं कि पालकाल में गया के जिस तीर्थ के चातुर्दिक धर्म स्मारक, सत्र व मंदिर बनाए गए वह गया का अक्षयवट ही है। इस युग में गवाह के रूप में यहाँ पाँच मंदिर विराजमान हैं। ऐसे मौखिरि वंशीय कृति के प्रदर्शन का श्रेष्ठ स्थल भी अक्षयवट ही है। जहाँ उस वंश के बीजक का दर्शन मंदिर के बाहरी दीवार पर किया जा सकता है। अक्षयवट की महत्ता मध्ययुग में भी विराजमान रही और अंग्रेजों के जमाने में एक प्रमुख चित्रकार थॉमस डेनियल ने जहाँ के चित्र को बनाकर अन्यान्य भारतीय कृतियों के साथ इसका प्रचार-प्रसार भी आधुनिक युग में कर दिया।

वर्ष 1963 से आजक अक्षयवट क्षेत्र में काफी कुछ परिवर्तन हुए कितने ही नए निर्माण हुए पर नहीं बदला है तो वहाँ का धर्ममय रूप। डॉ रवि के शोध निदेशक के रूप में जब उनके साथ वहाँ गया तब यहाँ के गयापाल पं० गणेश लाल दुभलिया ने हम दोनों को अक्षयवट से जुड़े बहुत संस्मरण सुनाए। पुण्य तरु अक्षयवट पूरे जम्बूद्वीप में सात तीर्थों में विराजमान है पर गया का यह वृक्ष पितृ तारण के रूप में जगत् प्रसिद्ध है। सचमुच लौकिक अलौकिक घटनाओं का गवाह गया का अक्षयवट गया धाम की पमुख पिण्डवेदी है और इसकी गणना पितृ तारक स्थल के रूप में प्रारम्भ काल से ही की जाती है।

'अपराजिता', पादरी बाजार, गोरखपुर (उ०प्र०)

श्री रामचरितमानस में 'विष्णुपद' का विनियोग

डॉ० राधानन्द सिंह

श्री रामचरितमानस वैष्णव भाव चेतना का अतिपावन अधिष्ठान है। गोस्वामी तुलसीदास ने जगजीवन के कल्याणार्थ श्री राम तत्व का निरूपण जिस कुशलता से किया है, उसमें आर्ष परम्परा की शैवशाक्त गाणपत्य और सौर धाराएँ समंजित हुई हैं और ये सभी धाराएँ वैष्णव भाव धारा की संगिनी है।

गया एक महान पितृ तीर्थ है और इस पितृ तीर्थ की संपूर्ण महत्ता 'विष्णुपद' पर आधृत है। विष्णु पद ही संपूर्ण पितरों का पावन तीर्थ है भगवान विष्णु की भववंधन से मुक्ति प्रदान करते हैं।

मुक्तिं जनार्दना दिण्छेज्ज्ञानमिण्छेन महेश्वरात्।
आरोग्यं भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद्धताशनात्।।

जो भववंधन से मुक्ति चाहते हैं, उनको विष्णु का ज्ञान चाहते हैं, उनको महेश्वर शिवजी का, आरोग्य चाहते हैं, उनका भास्कर (सूर्य) का, तथा धन चाहते हैं, उनको अग्नि का भजन ध्यान करना चाहिए। शास्त्रों में वर्णित अनेक प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि भगवान विष्णु के चरण ध्यान से जीव सद्गति को प्राप्त करता है। ऐसे ही भगवान विष्णु का अवतरण श्री राम रूप में हुआ है। महर्षि बाल्मीकि ने स्वयं स्पष्ट लिखा है–

सहि देवैरूदीर्णस्य रावणस्य वधार्थि भिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः।। (वा.रा. 2/1/7)

अर्थात् परम प्रचण्ड रावण के बध की इच्छा से प्रेरित देवताओं के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर सनातन विष्णु भगवान ने मनुष्य लोक में जन्म लिया।

श्री रामचरितमानस में गोस्वामी जी को स्पष्टोक्ति है :–

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुवंस लीन्ह अवताराण।

रा.च.मा. 1/47/1

हरि शब्द विष्णु के लिए प्रयुक्त होता है। अत: मानसकार की स्पष्ट मान्यता है कि श्रीराम विष्णु के ही अवतार है। अन्यत्र भी कहा गया है–

भुज बल विस्वजितब तुम्हजहिआ। धरिहहिं विष्णु मनुज तनु, तहिआ

रा.च.म. 1/138/3

गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम को विष्णु के विभिन्न अवतारों से संबंधित बताते हुए श्रीराम के विभिन्न विशेषणों का प्रयोग किया है। इससे यह स्पष्ट है कि श्रीराम को विष्णु ही मानते थे :–

मीन कमठ सूकर नरहरी। वामन परसुराम बपुधरी जब–जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हहिं बसायो।

रा.च.मा. 6/109/4

वैदिक प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि गया का विष्णु पद त्रिविक्रमावतारी भगवान वामन के चरण हैं।

इंद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढ़मस्य पां, सुरे स्वाहा। यजु० 5/15

यास्क पूर्ववर्ती आचार्य शाकपूणि ने निदधे पदं की त्रेधामाधाय पृथिव्यां अन्तरिक्षे दिवि च एवं और्णनाभाचार्य ने.... समारोहणे विष्णुपदे गया शिरसि..... ऐसी तत्संबंधी व्याख्या देकर उपर्युक्त तथ्य को प्रमाणित किया है।

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार 'विष्णुपद' जो वामन के चरण हैं वे खरारि श्री राम के ही पद हैं :–

जबहिं त्रिविक्रम भए खरारी। मानस 4/29/8 अर्थात्, जिनको हम 'खरारि'- रामचन्द्र कहते हैं वे ही त्रिविक्रम भगवान वामन हुए थे। वे बटूरूप में आए और विराट वामन हो कर एक पग में सातों पताल और मर्त्यलोक नाप लिए और दूसरे में सातों स्वर्ग नाप लिए और तीसरे पग के लिए कहीं कोई स्थान ही नहीं रहा था। वे ही प्रभु श्रीराम हैं।

अत: उपर्युक्त सभी तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विष्णुपद और रामपद पर्याय वाची हैं। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस में जिस राम चरण (पद) की महत्ता का वर्णन आद्योपान्त किया गया है उसमें विष्णुपद की भाव चेतना सन्निहित है इसमें दो मत नहीं है। मानस में उनके चरण ही भवसागर से तरने की इच्छावालों के लिए एकमात्र नौका है। यही हेतु है कि गोस्वामी तुलसीदास ने बालकाण्ड के मंगलाचरण में उनके चरणों को भवाब्धिपोत कहा है :-

यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्ति तीर्षवतां। मानस मंगलाचरणश्लोक-6

मानस के अंत में गोस्वामीजी घोषणा करते हैं कि मैंने अन्त:करण के अंधकार को मिटाने के लिए जिस मानस को भाषाबद्ध किया उसकी रचना श्रेष्ठ कवि भगवान शंकर ने श्रीरामपद में (विष्णुपद में) अनन्य भक्ति प्राप्त होने के लिए की थी :-

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुना दर्गमं
श्री मद्राम पदाब्ज भक्ति मनिशं प्राप्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रव्घुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तम:शान्तये
भाषाबद्धमिंद चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।

उत्तरकाण्ड *श्लोक-1-समापन*

इस प्रकार मानस के रामभक्ति के इच्छुक सारे साधक रामचरणारविन्द को ही एक मात्र अपना आधार मानते हैं। इसके आधार पर श्री रामचरितमानस का अलग विष्णुपदी भाष्य तैयार किया जा सकता है। मानस में शताधिक स्थलों पर श्रीरामपद की महत्ता वर्णित है।

जिस प्रकार विष्णुपद पितरों को सद्गति प्रदान करते हैं उसी प्रकार श्री रामचरितमानस में श्रीरामपद के स्मरण से महान साधकतो परमधाम गमन करते हैं, अधम पात्र बालि भी उनके चरण स्मरण कर मृत्यु को अत्यन्त सहज रूप में प्राप्त कर मुक्त हे जाता है, यथा-

रामचरण दृढ़ प्रीति करि बलि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नागा।।
राम बालि निजधाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा।। ***मानस*** *4/10 दोहा 11/1*

अर्थात् श्रीरामजी के चरणों में दृढ़ प्रीति करके बालि ने शरीर को वैसे ही त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना न जाने। श्री रामचन्द्रजी ने बालि को अपने परम धाम भेज दिया। बाण लगते ही बालि पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर उठकर भगवान की ओर देखकर चित्त को उनके चरणों में लगा दिया- पुनि पुनि चितई चरन चित दीन्हा। यही हेतु है प्राण त्यागते समय बालि यह वर माँगता है कि- ''जेहि जोनि जन्मौ कर्मवस तहँ राम पद अनुरागऊँ।। अत: जो धाम जटायु और विभीषण को देने को कहा वहीं निजधाम बालि को दिया। अत: विष्णुपद परममुक्ति धाम है।

मानस की महान साधिका शवरी भी अपने शरीर का परित्याग प्रभु के चरणकमलों को अपने हृदय में धारण करके करती है। गोस्वाामी तुलसीदास ऐसे रामपद अर्थात् विष्णुपद में सतत् अनुराग करने की बात कहते हैं।

बार-बार प्रभु पद सिरू नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई।
कहि कथा सकल बिलोकि रे मुख हृदयँ पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भई जहँ नहिं फिले।।
नर बिबिध कर्म अधर्म बहुमत सोकप्रद सब त्याग।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू।।

मानस *4/36/7 एवं छन्द*

अर्थात् श्रीरामपद (श्री विष्णुपद) की भक्ति मुक्ति विधान करनेवाली है। यह सर्वविध कल्याणकारिणी है।

गयाधाम में जहाँ श्रीविष्णुपद अवस्थित हैं वहाँ गया उच्चारण मात्र से मुक्ति का हार खुल जाता है। श्रीरामचरितमानस में जिस कैकेयी ने अपने मुख से श्रीराम बनगमन का वरदान माँगा और श्रीराम से कपटपूर्ण बात की उस मुख बचन के बारे में गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देश में गया आदि तीर्थ।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे।

***मानस** 2/43/7*

मगध देश अपवित्र माना जाता है क्योंकि इसपर राजा त्रिशंकु के रथ की छाया पड़ी हुई है। राजगृह तथा विषय चारण परम पवित्र है एवं नदियों में पुनः पुनः नामक नदी श्रेष्ठ है :- कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहंवनम विषय चारणः नदी च पुनः पुनः गरूढ़ पुराण अ० 83/1

मानस पीयूषकार मानते हैं कि जैसे गया में फल्गु नदी के जल से पिण्ड देने से पितरों का उद्धार होता है, उन्हें सुख होता है, वैसे ही कैकेयी के इन वचनों द्वारा श्रीरामजी राजा को अपयशरूपी दुःख से मुक्त करेंगे। श्रीराम ने वन में जाकर विराध खर दूषणादि चौदह सहस्र अमर राक्षसों कबंध तथा सपरिवार रावण को मुक्त किया। शरभंग, गृधराज जटायु और शबरी इन भक्तों को सद्गति दी बालि को निज धाम दिया। यह सब कैकेयी के वचन के कारण ही हुआ, अतः वचन को गयादि तीर्थ कहा।

इस प्रकार श्रीराम चरितमानस में जीव के उद्धार के लिए ही और असुरों के पापक्षय हेतु कैकेयी के मुख से निकले वचन को 'गया' से उपमित किया गया, क्योंकि पृथिव्यां च गया पुण्या 'गरूड़पराण (83/22-23)।

गया में विष्णुपद वह तीर्थ है जहाँ से भवबंधन का द्वार उन्मुक्त होता है। यह वह तीर्थ है जहाँ से भवबंधन का द्वार उन्मुक्त होता है। यह वह तीर्थ है जहाँ से भवसागर को पार कर सकना सुगम होता है- यत्पादण्लवमेकमेवहि...। यही हेतु है कि मानस के अंत में कहा गया है।

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।

यह राम पद ही विष्णुपद है।

महामंत्री, गया जिला हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, गया

ज्ञान-सूर्य : स्वामी विवेकानंद

डॉ० उमाशंकर प्रसाद

भारतवर्ष में नवजागरण की शंखध्वनि करने वाले महापुरुषों में स्वामी विवेकानंद का स्थान अद्वितीय है। वे भारतीय धर्म और संस्कृति के उन्नायक और सजग पहरेदार थे। उनका दिव्य संदेश वस्तुतः भारतवर्ष के लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए नए आध्यात्मिक उत्थान का उद्घोष था। इस गौरवर्ण महाप्रतापी संन्यासी के समुन्नत ललाट पर अलौकिक आभा विराजमान रहती थी, अथाह ज्ञान-सम्पदा से मन-मस्तिष्क भरा रहता था, भुजाओं में अद्भुत शक्ति-सिंधु लहराता था तथा हृदय में करूणा की पयस्विनी शतधा होकर प्रवहमान रहती थी।

कलकत्ता के सिमुलिया मुहल्ले में 12 जनवरी सन् 1863 ई० को विश्वनाथ और भुवनेश्वरी देवी के घर एक बच्चे का जन्म हुआ, जिसका नाम नरेन्द्रनाथ रखा गया। 'होनहान विरवान के होत चीकने पात' की कहावत को चरितार्थ करते हुए बालक नरेन्द्र बचपन से ही पढ़ाई में अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देने लगा। एम०ए० के प्रथम वर्ष तक आते-आते उन्होंने पश्चिम की प्रमुख सभी दार्शनिक विचारधाराओं के प्रमुख तत्वों को समझ लिया था उनकी प्रगाढ़ अध्ययनशीलता और विलक्षण स्मरणशक्ति को देखकर जनरल असेम्बली कॉलेज के दर्शन विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष विलियम स्टिंग ने कहा था- 'ऐसा मेधावी छात्र यूरोप के किसी भी विश्वविद्यालय में देखने को भी नहीं मिलेगा।' इन पाश्चात्य विचारधाराओं ने नरेन्द्र के चिंतन में भारी उथल-पुथल मचा दी। वह निरन्तर सोचने लगा कि डिकार्ट का अहंवाद, ह्यूम और बेन की नास्तिकता, डार्विन का विकासवाद, स्पेंसर का अज्ञेयवाद और मिलर का यथार्थवाद- इनमें से कौन सत्य है ? इस तरह के प्रश्नों ने उनके जिज्ञासु मन को अशांत कर दिया। उन्होंने अनुभव

किया कि बुद्धि की सहायता से दार्शनिक तत्वों की मीमांस करना पर्याप्त नहीं है। उनके तार्किक मस्तिष्क ने सोचा कि इस इंद्रियाग्रह्य भौतिक जगत से परे भी कोई महान सत्ता है ?कोई सर्वनियंता है ?तो इसके बारे में निश्चय हो जाना चाहिए कि वह है या नहीं ?अगर है तो कैसा है ?उसने मानव जीवन की सृष्टि किस उद्देश्य से की है ?इन प्रश्नों ने नरेन्द्रनाथ को भीतर तक झकझोर दिया। जब किसी साधु-संन्यासी, धर्मप्रचारक या भगवद्भक्त को देखते तो अपने प्रश्नों के समाधान चाहते। सौभाग्य से एक दिन नरेन्द्रनाथ के पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ के घर पर रामकृष्ण परमहंस पूजनोत्सव में पधारे। यहीं पर नरेन्द्र की प्रथम भेंट रामकृष्ण परमहंस से हुई। स्वामी विवेकानंद ने गुरुदेव के प्रथम दर्शन का वर्णन इस प्रकार किया है-

देखने में वे बिल्कुल साधारण आदमी मालूम होते थे। उनके रूप में कोई विशेषता न थी। बोल बहुत सरल और सीधी थी। मैंने मन में कि क्या यह संभव है कि यहसिद्ध पुरुष हों। मैं धीरे-धीरे उनके पास पहुँचा और उनसे वे प्रश्न पूछे जो मैं अक्सर औरों से पूछा करता था। महाराज, क्या आज ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं ?उन्होंने जवाब दिया, ''हाँ।'' मैंने फिर पूछा, क्या आप उसका अस्तित्व सिद्ध कर सकते हैं ?जवाब मिला, ''हाँ।'' मैंने पूछा, कैसे ?जवाब मिला ''मैं उसे ठीक वैसे ही देखता हूँ जैसे तुम्हें।''

परमहंस जी की वाणी में बिजली की -सी शक्ति थी जो बाद में चलकर स्वामी विवेकानंद की वाणी और दृष्टि में उत्पन्न हो गया था। रामकृष्ण जी भी अपनी भक्त मंडली में नेरन्द्रनाथ के अलौकिक स्वरूप का बखान करते और कहते कि इस युवक के द्वारा लोकोपकार के अनेक कार्य सम्पन्न होने वाले हैं। वे कहते- 'केशवचन्द्र सेन ने जिस शक्ति के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त की है, नरेन्द्र में उसमें अठारह गुणा अधिक वही शक्ति विद्यमान है। नरेन्द्र एक अलौकि पुरुष है। केशवचन्द्र ज्ञान-दीप है तो नरेन्द्र ज्ञान-सूर्च' अपने स्वाध्याय और अध्यवसाय के बल पर तथा गुरु की कृपा से वे वेदांत के अद्वितीय और मर्मज्ञ विद्वान बन गए।

विषय परिस्थितियों में अमेरिका जाकर विश्व धर्म सम्मेलन में भारत की ध्वजा फहराने वाले विवेकानन्द ने अपना तन-मन-धन सबकुछ भारत के स्वाभिमान के लिए बलिदान कर दिया। 1863 ई० का 11 सितम्बर का दिन धार्मिक जगत के इतिहास में विशेष स्मरणीय है। अमेरिका के शिकागो शहर में उन्होंने हिंदू धर्म और वेदांत की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जिसे सुनकर पूर्व और पश्चिम के विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के प्रमुख प्रतिनिधिगण और श्रोता मंत्रमुग्ध हो उठे। अमेरिका भर में उनकी प्रसिद्धि की दुंदुभि बजने लगी। अमेरिका की अग्रणी दैनिक 'न्यूयार्क हेराल्ड' ने यहाँ तक लिख दिया कि- ''शिकागो धर्म सभा में विवेकानन्द हीं सर्वश्रेष्ठ धर्म व्याख्याता है। उनका भाषण सुनकर ऐसा लगता है कि धर्म मार्ग में यहाँ से धर्म प्रचारकों को भेजना निरी मूर्खता है।'' प्रेस ऑफ अमेरिका ने लिखा- ''हिंदू धर्म और दर्शन के आचार्य स्वामी विवेकानंनद सभी सभासदों में अग्रगण्य हैं। उनकी वाणी में जादू का असर है। यद्यपि इसाई जगत के अनेक धर्माचार्य वहाँ उपस्थित थे पर उन सभी के भाषण-वक्तव्य स्वामीजी के व्याख्यानों के सामने फीके पड़ गए। स्वामीजी ने धर्म तत्वों की ऐसी प्रस्थापना की कि वे श्रोता-मंडली के हृदय पर गंभीरता से अंकित हो गए।''

गैरिक वस्त्रों से सज्जित इस संन्यासी के पंडित्य और अद्भुत वक्तृत्व कला से प्रभावित होकर अनेक पादरी अपने उपासना गृहों में व्याख्यान देने के लिए उन्हें आमंत्रित करने लगे। फरवरी 1894 में उन्होंने डिट्राइट युनेटेरियन चर्च में व्याख्यान दिए। शिकागो, न्यूयार्क और बोस्टन के विभिन्न नगरों में भी उन्होंने धर्म-तत्व की बारीकियों को उजागर किया। पाश्चात्य जगत को भारत का संदेश और सार्वजनीन धर्म का आदर्श संबंधी व्याख्यान वहीं दिए गए। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में 'वेदांत-दर्शन' पर इनके व्याख्यान सुनकर अनेक विद्वान अध्यापक और छात्र चकित रह गए। 1896 ई० में स्वामीजी लंदन यात्रा पर निकले। उनका सत्संग लाभ करने के लिए बड़ी संख्या में प्रबुद्ध श्रोता संध्या सभाओं में उपस्थित होने लगे। इनके ज्ञान-योग, भक्ति-योग, कर्म-योग और योग-साधना पर दिए गए सारगर्भित व्याख्यानों की चर्चा प्रमुखता के साथ पत्र-पत्रिकाओं में होने लगी। योग के महत्त्व को रेखांकित करते हुए स्वामी जी कहा करते थे शरीर और मन की उच्चतम स्थितियों के विकास के लिए योग-साधना अपेक्षित है। इन्द्रिय संयम और चित्त की एकाग्रता से जीवन की नस-नस में योग-शक्ति संचरित होती है। जिसने योग को साधा उसके लिए वेदांत का गुढ़ार्थ सहज और सरल हो जाता है।

निष्कर्षत: स्वामी जी हिन्दू धर्म और वेदांत के मात्र प्रचारक ही नहीं, उसके परम पुजारी और उपासक थे। उन्होंने वेद, उपनिषद और वेदांत के संबंध में जो श्रद्धापूर्वक उद्गार व्यक्त किए हैं, वे मानव समुदाय के लिए अमृत की बूंद हैं। वस्तुत: स्वामीजी मानव-मात्र की कल्याण कामना करने वाले विश्व मानव थे। सत्य और प्रेम की अमोघ शक्ति ने ही उन्हें जनप्रिय बनाया था। प्रतिभा और पंडित्य के साथ-साथ करूणा का जो स्रोत उनके हृदय में विराजमान था वह छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, ऊँच-नीच सबके लिए समान रूप से प्रवहमान रहता था। 4 जुलाई सन् 1902 ई० को समाधिस्त होकर वे परमधाम को सिधार गए। स्वामी जी आज हमारे बीच नहीं हैं पर आध्यात्मिक ज्योति की जो मशाल वे जला गए हैं, उसके लिए वे शताब्दियों तक पूजे जाते रहेंगे।

क्षेत्रीय निदेशक, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल्स, बिहार जोन-2

पितरों का मुक्ति-स्थल, गया धाम

डा० पूनम कुमारी

भारतीय धर्म दर्शन में पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय मनीषियों द्वारा स्वीकृत है। जीव का पुनर्जन्म उसके कर्म के अनुसार होता है। कर्मों के फल को भोगे बिना जीव की मुक्ति नहीं होती। जिन-जिन शरीरों से वह जिन-जिन कर्मों को करते हैं, उसे उन कर्मों को भोगना पड़ता है। पूर्व के किए गए कर्म बिना भोगे झीण नहीं होते, चाहे वे कर्म शुभ हो या अशुभ हों। इसी संदर्भ में भारतीय धर्म-ग्रंथों में गयाधाम की महत्ता बताई गई है, क्योंकि यहाँ भगवान विष्णु के चरण अनादि काल से पूजे जाते रहे हैं। कहा जाता है कि पितरों को प्रत्येक पुत्र पर पितृ-ऋण होता है। पितृ-ऋण से विमुक्त होने के लिए पुत्र अपने पितरों का पिण्डदान करता है। यह एक पौराणिक एवं धार्मिक मान्यता है कि गयाधाम में पिण्डदान के बाद ही वे तृप्त होते हैं और शुभाशुभ कर्मों के बंधन से विमुक्त होते हैं। इसी मान्यता के अनुसार, आर्यावर्त्त के नाना जनपदों से श्रद्धालु पुत्र-गण अपने पितृ-ऋण से मुक्ति के लिए आते हैं और श्रद्धा से पिण्डदान करते हैं। पुत्र शब्द का शाब्दिक अर्थ भी कुछ ऐसा ही बतलाता है। कहा गया है कि पुत्र वस्तुतः वही है, जो अपने पितरों को पुन् नामक नरक से परित्राण दिलाता है और जो अपने आचरण से अपने पिता को परितुष्ट करता है। इसी भावना से उत्प्रेरित होकर पुत्र-गण पितृ-ऋण से मुक्ति पाने के लिए विष्णुपद में नतमस्तक होते हैं और पितरों के प्राप्तव्य पिण्ड का संप्रदान करते हैं।

आधुनिक युग में भौतिकवादी दृष्टियाँ इस कदर हावी हो गई है कि लोग पाप-पुण्य को नजरअंदाज करने लगे है। इसके लिए उनके पास कई अपने तर्क भी होते हैं। लेकिन, तत्काल और तत्क्षण परिणाम सामने नहीं आने पर भी मनुष्य के शुभाशुभ कर्म आजीवन उसका पीछा करते रहते हैं । जैसे दूध शीघ्र ही दही नहीं बन जाता, वैसे ही हमारे शुभाशुभ कर्म शीध्र ही फल नहीं दे देते । यदि कोई व्यक्ति देश के किसी कोने में हत्या या डकैती करता है, तो तुरंत उसकी सजा उसे मिल भी सकती है, नहीं भी। लेकिन वह कहीं-न-कहीं अवश्य पकड़ा जाता है। लोग मंत्र-तंत्र की खिल्ली भी उड़ाते हैं। बहुतों से यह भी कहते सुना गया है कि भला पिण्डदान से भी पितरों को मुक्ति मिल सकती है ?तो इसका सीधा जवाब यह है कि जब नट के मंत्र से जहरीले साँप भी वश में कर लिए जाते हैं तो पितरों की मुक्ति क्यों नहीं हो सकती ! उपनिषद् में एक कथा आई है कि एक पुत्र अपने माँ-बाप की अवहेलना कर चला गया । जंगल में उसने घोर तपस्या की। एक दिन ध्यानमग्न उस तपस्वी के शरीर पर पेड़ पर बैठी चिड़िया ने बीट कर दिया। तपस्वी ने शाप दे दिया और चिड़ियाँ जल गई। एक दिन वह भिक्षाटन करते हुए एक गृहस्थ के दरवाजे पहुँच गया । उस घर की स्त्री अपने पति को खाना खिला रही थी। तपस्वी ने भिक्षा माँगी। भिक्षा देने में कुछ देर हुई, तो तपस्वी ने क्रोधित होकर कहा कि मैं शाप दे दूँगा तो उस पतिव्रता ने उत्तर दिया कि मैं वह चिड़िया नहीं हूँ, जो तुम्हारे शाप से जल जाऊँगी। तुम्हारी तपस्या अधूरी है। जाओ, और माता-पिता की सेवा करो। इस कथा से दो बातें प्रमाणित होती हैं। पहली यह कि धर्मनिष्ठ व्यक्ति घर बैठे सबकुछ जान लेता है और दूसरी यह कि बिना माता-पिता की सेवा के मनुष्य के सारे कर्म कोई परिणाम नहीं देते । इसीलिए हमारे यहाँ मातृदेवो भव, पितृदेवो भव की मान्यता प्रचलित है।

अब पितरों के मुक्ति-स्थल गयाधाम की कुछ विशेषताओं की जानकारी कर ली जाय। गया नाम की चर्चा वेदों, उपनिषदों और पुराणों में भिन्न-भिन्न रूपों में आई है। गया नाम के बारे में भी कई प्रकार के मत मिलते हैं। कोई गयासुर की गाथा पर इसका नामकरण आधारित मानते हैं, कोई गय नामक राजा के नाम पर। सामान्य तौर पर गयासुर राक्षस के शरीर पर भगवान विष्णु के चरण पड़ने से इसकी महत्ता मानी गई है। कहा जाता है कि यह गयासुर नामक एक असुर द्वारा बसायी गयी नगरी है। कहा जाता है कि गयासुर ने, जो 125 योजन लम्बा एवं 60 योजन चौड़ा था, कोलाहल नामक पर्वत पर सहस्त्रों वर्षों तक तप किया। भगवान विष्णु ने प्रसन्न होकर उसे यह वरदान दिया कि वह देवों, ऋषियों आदि से भी ज्यादा पवित्र हो जाए। अब जो लोग उसे देखते या स्पर्श करते थे,वे स्वर्ग चले जाते थे। इस प्रकार यम की राजधानी खाली पड़ गई और तब देवताओं ने गयासुर से कहा कि वह अपने शरीर को यज्ञ के लिए दे दे। गयासुर सन्नद्ध हो गया और पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पड़ा कि उसका सिर कोलाहल पर्वत तथा पैर दक्षिण की

ओर हो गए। गिर जाने के बाद भी उसका शरीर हिलता रहा। इसपर ब्रह्मा बड़े चिंतित हुए। उन्होंने भगवान विष्णु को उसके शरीर को स्थिर करने को कहा। परन्तु, भगवान विष्णु के प्रयास के बावजूद वह हिलता रहा। इसपर उन्होंने उसके शरीर पर एक शिला रख दी, पर वह फिर भी हिलता रहा। पुनः भगवान विष्णु उसके शरीर पर जनार्दन, पुण्डरीक, एवं आदि गदाधर के रूप में बैठ गए, फिर भी शरीर हिलता रहा। ब्रह्मा को उसके शरीर पर प्रपितामह, पितामह, फलगवीश, केदार एवं कनकेश्वर के रूपों में पाँच विभिन्न स्थानों पर बैठना पड़ा। विनायक हाथी के तथा सूर्य लक्ष्मी, गौरी इत्यादि तीन रूपों में बैठ गए। भगवान विष्णु के गदा द्वारा गयासुर को स्थिर कर दिया। इसपर गयासुर ने पूछा कि उसने तो यज्ञ के लिए अपना शरीर दे दिया है, फिर भी उसे क्यों मारा जा रहा है ?तब देवों को अपनी गलती का अहसास हुआ और वे उससे कुछ वरदान माँगने को कह उठे। गयासुर ने वरदान माँगा कि जबतक पृथ्वी, पर्वत, सूर्य, चन्द्र एवं तारे रहे, तबतक ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं अन्य देव उसके शरीर पर रहें। यह तीर्थ मेरे नाम पर रहे, सभी तीर्थ गया के मध्य में विस्तृत हों, सभी श्राद्ध यहीं सम्पन्न हों। देवताओं ने ऐसा ही वरदान दे दिया तभी से गया धाम की महत्ता भारतीय जन-जीवन में घर कर गई है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान के अनुसार गया को हिन्दुओं का धर्मनगर कहा गया है। इस शहर ने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं और यह कई अवस्थाओं से गुजर चुका है। ईसा से पूर्व यह एक समृद्धशाली नगर था, परन्तु ईसा के उपरान्त चौथी शताब्दी में लगभग यह नष्ट हो गया। आज यह अपने प्राचीन धरोहर लिए हुए हिन्दू धर्मावलम्बियों का प्रमुख तीर्थ स्थल है। 'वायु-पुराण' के अनुसार गया उत्तर में प्रेतशिला और दक्षिण में महाबोधि वृक्ष तक लगभग 18 किलोमीटर तक फैला हुआ है। इस शहर में कई दर्शनीय स्थल हैं। विष्णुपद मंदिर, मंगलागौरी, बगलादेवी, पितामहेश्वर आदि मंदिर, प्रेतशिला, रामशिला और ब्रह्मयोनि के पर्वत तथा वैतरणी, रामसागर, सूर्यकुंड जैसे पवित्र सरोवर ।

गया में श्राद्ध करने से सभी महापातक नष्ट हो जाते हैं। 'मत्स्य-पुराण' में गया को पितृ-तीर्थ और सर्वोत्कृष्ट तीर्थ माना गया है। धार्मिक मान्यता है कि गया में पुत्र या किसी अन्य द्वारा नाम एवं गोत्र के साथ पिण्डान करने से शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। मोक्ष की उत्पत्ति चार प्रकार से बताई जाती है - ब्रह्म ज्ञान से, गया श्राद्ध से, गौओं की रक्षा में निधन होने से तथा कुरूक्षेत्र में निवास करने से। इनमें गया-श्राद्ध का सर्वाधिक महत्त्व है। वैसे तो गया में श्राद्ध किसी समय भी किया जा सकता है, लेकिन कुआर महीने के पितृपक्ष में श्राद्ध का विशेष महत्त्व है। संन्यासी के लिए गया में पिण्डदान का निषेध किया गया है। संन्यासी केवल अपने दंड का प्रदर्शन करता है और उसे विष्णुपद पर रखता है। गया में पितृ-पिण्ड दूध में पकाये गये चावल, पका चावल, जौ का आटा, फल, कंदमूल, तिल का खल्ली, मिठाई, घी या दही या मधु से मिश्रित गुड़ से किया जाता है। गया-श्राद्ध में जो विधि है, वह है पिण्डासन बनाना, पिण्डदान करना, कुश पर पुनः जल छिड़कना, दक्षिणा देना और भोजन देने की घोषणा करना। गया स्थित प्रसिद्धनदी वैतरणी में जो व्यक्ति स्नान करता है और गोदान करता है, वह अपने कुल की 21 पीढ़ियों की रक्षा करता है। अक्षयवट के नीचे जाने का भी काफी महत्व बताया गया है। गया में कोई भी ऐसा स्थल नहीं है जो पवित्र न हो। फल्गु स्नान का भी धार्मिक दृष्टि से काफी महत्व है। गया शहर फल्गु के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। आम तौर पर वह सूखी रहती है, लेकिन थोड़ा सा बालू हटाकर गड्ढ़ा कर दिया जाए तो तुरंत पानी आ जाता है। पिण्डदान करने वाले व्यक्तियों के लिए इसका विशेष महत्व है। कुल मिलाकर गया धाम धार्मिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। इसका पितृपक्ष का मेला प्रसिद्ध है। देश के कोने-कोने से लोग यहाँ आते हैं और अपने पितृ-;ण से मुक्ति का व्रत पूरा करते हैं। जिला प्रशासन पितृपक्ष के दौरान कई प्रकार की तैयारियाँ करता है। यात्रियों की सुख-सुविधा के लिए तमाम तरह की तैयारियाँ की जाती हैं। पूरे पखवारे तक गया शहर में खूब धूमधाम रहती है। ऐसे तीर्थ को सभी धर्मावलम्बी बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करते हैं। हमें भी गया धाम पर गर्व है।

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

मानव-जीवन में संस्कार का महत्त्व

डॉ० सरदार सुरेन्द्र सिंह

सनातन धर्म में संस्कार का विशेष महत्त्व है। इस कारण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अनेक संस्कार करने पड़ते हैं। संस्कार का अर्थ है सुधार, अनुभव, मनोवृत्ति या स्वभाव का शोधन - जो जन्म से लेकर मृत्यु के बाद तक किये जाने वाले कर्म है। संस्कारो का मूल उद्देश्य शरीर और आत्मा का शुद्धिकरण, विध्न और बाधाओं का निवारण तथा देवी-देवताओं, बड़े-बुजुर्गों का आशीर्वाद प्राप्त करना है। इसके अन्तर्गत् देवताओं की स्तुति, प्रार्थना, और यज्ञों का आयोजन किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि संस्कारहीन व्यक्ति का जीवन अपवित्र, अपूर्ण और अव्यवस्थित होता है। लेकिन दु:खद स्थिति है कि कुछ संस्कारों के अलावा सब विसार दिये गये हैं।

यों तो धर्म ग्रंथों में सोलह संस्कार की चर्चा की गयी है जिसमें गर्भाधान संस्कार, पुसवन संस्कार, सीमन्तोनयन संस्कार, जाति कर्म संस्कार, नाम करण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्न प्रासन संस्कार, चूड़ाकर्मा (मुण्डन) संस्कार, कर्णवेध संस्कार, विद्यारम्भ संस्कार, उपनयन संस्कार, वेदारम्भ संस्कार, चूड़ान्त संस्कार, समावर्तन संस्कार, विवाह संस्कार, और सबसे अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता है। लेकिन वैदिक काल की संस्कृति भी अलग है जिसे वैदिक संस्कार कहते हैं। इसके साथ हीं 'लौकिक संस्कृत' के माध्यम से जो संस्कार मानवों में विशेषता लाते हैं उसे लौकिक संस्कार कहते हैं। यह संस्कार लोक भाषाओं से प्रभावित होते रहे हैं। यह संयोग की बात है कि संस्कृत, संस्कृति, संस्करण, सुकर्म, संस्कारित एवं संस्कार शब्दों की संरचना व्याकरण के अनुसार समान धातु एवं प्रत्ययों से ही होती है। सम्+ से संस्कार शब्द बनता है। यहाँ तियों के कारण सामान्य, विशेष या विशेष सामान्य बन जाय वहाँ संस्कार का उदय होता है।

संस्कार शरीर एवं आत्मा से दोषों का अपसरण करते हुए विशिष्ट गुणों का सन्निधान करता है। जन्म से मनुष्य अतिशय दोषों को भी साथ लाता है। पूर्व जन्म के गुण-दोष भी साथ आ जाते हैं। इसीलिए 'मनु' सबको जन्म से शुद्र अर्थात दोषपूर्ण मानते है। संस्कार के बाद वही व्यक्ति द्विज अर्थात द्विजन्मा या ब्राह्मण बन जाता है। यहाँ ब्राह्मण का अर्थ जाति नहीं ब्रह्मज्ञाता से है। कहा गया है कि जो संस्कार प्रारम्भ काल में लग जाते हैं, वे नवपात में लगे लकीर की तरह मिटते नहीं। पत्थर की दुकान में देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ पत्थर हीं रहता है। लेकिन मंदिर में संस्कार होने के बाद देवी-देवता का रूप धारण कर लेता है एवं पूजा के लिए भक्तगण अपना सर्वस्व अर्पित करते हैं। संस्कृति एवं संस्कार के उपासकों का मानना है कि मर्यादा पूर्ण निष्ठा के साथ यदि वैज्ञानिक दृष्टि रहे तो, ऐसे व्यक्ति को संसार एवं संसारेतर श्रेय एवं प्रेय, स्वयं भगवान तक हस्ताकमलवत उपलब्ध हो जाते हैं। कदाचार या तिरस्कार तो उनसे दूर हीं रहने में अपना कल्याण समझते हैं। धर्म भी पात्रता से प्राप्त होता है। धन से धर्म करने के बाद हीं सुख मिलता है, अधर्म से तो दु:ख का सामना हीं करना पड़ेगा। संस्कार जानवर में मनुष्य का गुण, मनुष्य में देव का गुण एवं देव में भगवान का विशिष्ट गुण पैदा कर देता है। संस्कारों की शाणा पर चढ़कर मानव जीवन महामणि के समान देता है। संस्कारों की शाण पर चढ़कर मानव जीवन महामणि के समान सर्वत्र सर्वकाल में प्रकाशित रहता है और दूसरों को भी प्रकाशित करता है।

संस्कार 'ब्रह्म' और 'दैव' दो प्रकार के होते हैं। (स्मृत्ति-धर्मशास्त्रानुसार) संस्कार मनुष्य में ब्रह्म या ब्रह्मवेता ब्राह्मण का गुण भर देते हैं। ब्रह्म संस्कार महायज्ञों, यज्ञों के माध्यम से किये जाते हैं। इसी प्रकार दैव संस्कार द्वारा मनुष्य देव सदृश गुणों को धारण कर लेता है। श्रोताग्नियों के द्वारा सम्पादित अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दशपूर्ण मास-इष्टि, चातृर्मास्य, आग्रायनेष्टि, निरूढ़-पशुबंध, सोत्रामणि ये हविर्यज्ञ संस्थाएँ में तथा अग्निष्टोम, उकथ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिशया, आप्तोर्यामादि, सोमयज्ञ संस्थाएँ कुल 21 संस्कार दैव संस्कार बताये गये हैं। इन संस्कारों का श्रोत संस्कार या यज्ञ वर्ग भी कहते हैं। इन्हें वैदिक संस्कार भी कहा जाता है। ब्राह्म या वैदिक संस्कार श्रोतसूत्र के आधार पर एवं दैव संस्कार गृहसूत्र के अनुसार कराये जाते हैं।

'व्यासस्मृति' में सोलह प्रमुख ब्राह्म संस्कारों का वर्णन मिलता है। सोलह स्मार्त संस्कारों को भी प्राक्जन्म संस्कार, शैशव संस्कार, शैक्षणिक संस्कार, एवं गृहरूप-प्रवेश संस्कार चार भागों में बाँटा गया है। प्राक्जन्म संस्कार में गर्भाधान (चतुर्थीकर्म), पुरातन, सीमन्तो नयन मीन संस्कार आ जाते हैं।

शैशव संस्कार में जातकर्म सूतिका (भवनादि का विधान) मेधाजनन-संस्कार (बौद्धिक विकास विधान), नाम करण संस्कार, निष्क्रमण (शिशु को सूतिका गृह से बाहर निकालना), अन्न प्रासन-संस्कार (अन्नादि भोजन), चूड़ाकरण या मुंडन-संस्कार, (चर्म रोगादि से निवृत्ति), कर्णवेध-संस्कार (तीसरे या पाँचवें वर्ष) ये सात संस्कार बचपन को संस्कारित करते हैं।

शैक्षणिक संस्कार में उपनयन या यज्ञोपवित संस्कार (भुक्ति-मुक्ति का अधिकारी) बनने की ओर उन्मुख करता है। यज्ञोपवित के तीन सूत्र देवत्रृण, ऋषित्रृण और पितृत्रृण से मुक्ति का संकल्प देते हैं। तीनों सूत्र के साथ ब्रह्मग्रंथी की व्यवस्था (ज्ञान कर्म उपासना) ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अन्य देशवासियों की तरह भारतीय जीवन निरूद्देश्य या भोगवादी नहीं होता, इसे उद्देश्यपूर्ण, श्रेय-प्रेय का माध्यम बताया गया है। वेदारम्भ द्वितीय शैक्षणिक संस्कार है। यह संस्कार उपनयन के साथ शुरू हो जाता है। उपनयन का अर्थ हीं होता है आचार्य के पास ले जाना, तीसरा संस्कार है। ब्रह्मचारी सोलहवें वर्ष में दाढ़ी-मूछ मुंडन करा सकता था। लेकिन आजकल यह संस्कार प्रचलित नहीं है। सेव करने की आधुनिक प्रथा इसी का परिवर्तित रूप है।

समावर्त्त या स्नान संस्कार - वेदमध्याय स्नायात, विधान के अनुसार स्वाध्याय के बाद अंतर्वाह्य शुद्धि के लिए स्नान किया जाता है तथा यह संकल्प लिया जाता है कि ऐसा कोई कृत्य नहीं करेंगे जिससे प्राप्त उपाधि निन्दित होती हो । आजकल का कनवोकेशन इसी संस्कार का आधुनिक रूप है। गृह प्रवेश संस्कार - स्नातक संस्कार, गृहस्थ प्रवेश संस्कार की ही भूमिका है। इस संस्कार के द्वारा सक्रिय जीवन में प्रवेश मिलता है। उपर्युक्त संस्कार जीवन - दक्षता के हीं संस्कार हैं। इन सभी संस्कार के समय, विधान, उद्देश्य, क्रियाशीलन सुनिश्चित है। ये सभी मिलकर जीवन की सफलता में अधिकाधिक सहयोग देते हैं। संस्कार जीवन को चमत्कारिक स्वरूप प्रदान करते है। यही कारण है कि अच्छा कर्म करते देखते हीं अनायास लोग कह उठते हैं कि अच्छा संस्कार वाला संस्कारी पुरूष है।

संस्कारों का प्रभाव, धर्म, पंथ, सम्प्रदाय, इष्टदेव उपासना एवं सम्पूर्ण मानव जीवन तथा जीवमात्र के कल्याणार्थ मंगल भार पर देखा जा सकता है। संस्कारों की अपनी कुछ खास प्रक्रिया होती है, पर सभी संस्कारों के पूर्व एक मांगलिक प्रक्रिया परमावश्यक मानी जाती है। पवित्रिकरण, ध्यान, आचमण, स्वस्तिवाचन, कलश स्थापन, संकल्प, पृथ्वीपूजन, गौरी-गणपति पूजन, नवग्रहादि पूजन, आचार्य पूजन की प्रक्रिया धूप, दीप, अक्षत, पुष्प, नैवेधदि षोडसोपचार से पूर्ण की जाती है। संकल्प के समय गौत्र, प्रवर, शाखा, सूत्र, वेदादि का जिक्र करते हुए उद्देश्य अभीष्ट का वर्णन, देशकाल, क्षेत्र, इष्टदेव, तिथि, नक्षत्र आदि का योग आवश्यक एवं वैज्ञानिक है। अपने कार्य में भी सहयोगियों का स्मरण विध्न बाधाओं का अपसारक होता है। मंगल कार्यों में इष्ट देवों, इष्ट मित्रों की उपस्थिति उत्साहवर्द्धक एवं विश्वासप्रदायिनी होती है।

संस्कार प्रक्रिया प्रारम्भ करने के पूर्व ऋषि, देवता छंद, विनियोगादि आदि का आवाह्न अत्याज्य है। ब्राह्म संस्कारों के लिए वैदिक मंत्र एवं होमादि के लिए पाक-आहुति (पकाई हुई आहुति खीर आदि) तैयार रहना चाहिए। हवन के समय सामान्य विशेष आहुति का ध्यान रखना आवश्यक है। संस्कार का काम निष्ठा श्रद्धा, विधिपूर्ण होना चाहिए। निर्वाह मात्र करने से फल भी निर्बाहात्मक ही होगा।

निष्ठा के अभाव में आजकल मात्र विवाह संस्कार और अन्त्येष्टि संस्कार अहंतुष्टि के लिए किया जाता है। जो मात्र प्रदर्शनार्थ होता है। ऐसे संस्कार कर्म, प्रभावी नहीं हो पाते हैं - वरन् इनका काम भी प्रतिकूल नजर आता है। संस्कार की सारी प्रक्रिया वैज्ञानिक है तथा शरीर एवं आत्मा दोनों की उन्नति में सहायक है। संस्कार प्रक्रिया में कर्मकांड एवं भावकांड दोनों का समन्वय श्रीराम एवं श्रीकृष्ण की तरह होना चाहिए। श्रीराम कर्मकांड बहुल भावकांड के प्रदर्शन अवतार थे एवं श्रीकृष्ण भावकांड बहुल कर्मकांड के प्रयोजक थे। ये दोनों ही संस्कार के प्रतीक स्तंभ है - ताथ इन्हें देखकर, मानकर इनकी संस्कार प्रक्रिया के। पढ़कर, जानकर संस्कार कराना निश्चित रूप से श्रेय-प्रेय योग-क्षेम का बाहक होगा । आवश्यक क्षमता योग्यता देने वाली प्रक्रिया को हीं संस्कार कहते हैं।

संवाददाता, प्रभात खबर, गया कार्यालय

युगयुगीन देवी-तीर्थ है गया

डॉ० राकेश कुमार सिन्हा 'रवि'

पुण्य भूमि गया प्रागैतिहासिक काल से आज तक विराट-सांस्तिक प्रवाह की साक्षी रही है। गया को भारतीय वाङ्गमय में 'प्राणतीर्थ' 'मोक्षधाम' व 'पितृभूमि' के रूप में अभिहित किया गया है। गया की ऐतिहासिक सांस्तिक गौरवपूर्ण परम्परा पौराणिक काल से ही ज्ञात हो जाती है। श्री बाल्मिकीरामायण, महाभारत, उपनिषद्, स्मृति तथा विभिन्न पुराणों के अलावे ऐतिहासिक साक्ष्यों के साथ-साथ श्राद्ध-पिंडदान संबंधी विविध कथाएँ तथा संदर्भ में गया विषयक तथ्य व तत्व उपलब्ध है।

असुर श्रेष्ठ 'गय' की साधना पराक्रम की भूमि गया, भगवान विष्णु की लीला भूमि व गदाधर अवतार स्थली के साथ-साथ तथागत ज्ञान भूमि के रूप में दूर-देश तक प्रसिद्ध है। अंत:सलिला फल्गु के किनारे अवस्थित गया नगरी में तीर्थ दर्शन व पूजन के लिए न सिर्फ देश के कोने-कोने से वरन् विदेशों में निवासरत् हिन्दू भी सालोभर आते रहते हैं। गया की मोक्षतोया फल्गु एक पौराणिक व पवित्र नदी है जिसके जल की बूंद पितरों के लिए अक्षय तृप्ति प्रदान करती है और वे परमगति को प्राप्त हो शांति-विश्रांति, सदा-सर्वदा के लिए प्राप्त कर लेते हैं। इसमें पर्व-पर्व पर स्नान-ध्यान कर जनता-जनार्दन पुनीत-पवित्र होती रहती है तो इसके तट पर तर्पण जैसे धर्मानुष्ठान का कार्य होता रहता है।

भारत वर्ष के प्राचीन धर्म नगरियों में एक गया की यह खासियत है कि यह नगर कला, संस्ति, तीर्थ परम्परा, विप्र-कर्म व देश भर में भ्रमण कालीन-संस्कृति का मूर्धन्य केन्द्र के रूप में आदि काल से ही चर्चित रहा है और पत्र-पत्रिकाओं में यहाँ के वैभव का समय-समय पर उजागर होता रहा है पर इन सबों से अलग है गया के दैवी तीर्थ की दास्तान ... जिसके आद्अंत अध्ययन व दर्शन गया जी को एक सशक्त देवी तीर्थ के रूप में रेखांकित स्थापित करता है।

शोध संदर्भ में वर्णित तथ्यों के हवाले यह कहना समीचीन जान पड़ता है कि भैरवी चक्र पर अवस्थित गया एक युग-युगीन देवी तीर्थ है जहाँ नगर भी में देवी के तीन दर्जन स्थान व नगर के बाहर द्वादश-देवी तीर्थ की उपस्थिति दर्ज है।

न सिर्फ गया वरन् सम्पूर्ण मगध में 'माता मंगला गौरी तीर्थ' सर्व प्राचीन देवीपीठ है। भष्मकूट पर्वत पर विराजमान माता जी का यह स्थान द्वादश देवी पीठ में 10 वें 108 शक्तिपीठ तीर्थ केन्द्रों में 33 वें स्थान पर विराजमान है। अष्ट योगिनी में प्रथम स्थान पर विराजमान माँ का यह स्थान देवी अंग पतन के पूर्व भी देवी अराधन केन्द्र के रूप में उपस्थित रहा जहाँ "मंगलकाली" की उपासना की जाती थी । सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में तंत्र-साधकों का अभिष्ट केन्द्र के रूप में स्थापित माता जी के इस स्थान का देवालय गुप्तकालीन मंदिर निर्माण कला शैली से युक्त है जहाँ पुरामहत्व के कितने ही वेशकीमती गुप्तकालीन व पालकालीन मूर्त्तविग्रह द्रष्टव्य है।

गया नगर का श्रेष्ठ देवालय श्री विष्णुपद में प्रभु के प्रधान पादालय के अतिरिक्त जिन देवी मंदिरों की चर्चा की जाती है उनमें जगत् नियंता श्री विष्णु की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी जी के साथ लरकोरिया माई, विन्धवासिनी माँ, ललिता माँ, ग्यासुरी माता ग्येश्वरी, कन्यकुमारी माँ, सरस्वती माता व आगे बुढ़िया माई (श्मशान काली) का नाम लिया जाता है। श्री विष्णुपद क्षेत्र में ही करसिल्ली पर्वतान्तर्गत् आदि महामाया मुण्डपृष्ठा देवी की गणना की जाती है। पंचकोशीय गया क्षेत्र की गणना माता के इसी स्थान को केन्द्र मान कर की गयी है जिसके दोनों तरफ ढाई-ढाई कोस गया जी सुविस्तृत है। यहीं से आगे फल्गु किनारे गायत्री घाट पर 10 भुजाओं की माता गायत्री का स्थान है जहाँ पाल कालीन मूत्तियाँ द्रष्टव्य है।

गया नगरस्थ देवी मंदिरों में शत्रु स्तम्भिनी माँ बगला जी, वाक् विद्या अधिष्ठात्री व नगर रक्षिका माता बागेश्वरी, दुख-निवारण केन्द्र दु:खहरणी, संकट से तारने वाली माता संकटा, आरोग्य प्रदात्री माता शीतला, आनन्द प्रदायिनी माँ आनन्दी, यश देने वाली माई यशी, सर्वत्र कल्याण करने वाली माता कल्याणी जी, प्लेग रोग मुक्तिदात्री माई प्लेगनी, आदि साधना केन्द्र श्री विष्णु काली, ब्रह्मा जी की अधिष्ठात्री पंचमुखी गायत्री आदि का सुनाम है ऐसे मार्ग रक्षिका, नगर रक्षिका व बाहरी अनिष्ट के निवारणार्थ भी गया क्षेत्र में कुछ देवी जी पूजित हैं इनमें माता दण्डी, माँ नारायणी, माता अग्नि, सती स्थान व देवीस्थान प्रमुख हैं। इन देवियों के पूजन क्षेत्र प्राय: नगर के उत्तर व दक्षिण की ओर अवस्थित है।

यह सुखद संयोग है कि गया के चारो तरफ बारह प्राच्य देवी केन्द्र मिलकर द्वादश देवी तीर्थ का निर्माण करते हैं इनमें तीन बोधगया क्षेत्र में माँ मातंगी, माँ सरस्वती व माता डुंगेश्वरी के नाम से पूजित हैं। मातंग ऋषि के साधना-आराधना स्थली के रूप में

मान्य यहाँ माता मातंगी की शास्त्र वर्णित रूप-स्वरूपानुरूप मूर्त्त विग्रह है। यह एक प्रमुख पिंड वेदी क्षेत्र है जैसा कि गया का सरस्वती तीर्थपुराण वर्णित यह वही स्थान है जहाँ पूरब से आती मुहाने व दक्षिण से आती लीलाजन (निरंजना) का गुप्त सरस्वती से संगम होता है। माँ सरस्वती के इस सप्तसरावती तीर्थ में हरेक सोमवती अमावस्या को विशेष मेला लगा करता है। माता डुंगेश्वरी मूलत: कौल राजाओं की अधिष्ठात्री हैं जिनकी यश: महिमा तथागत के जमाने में और उसके बाद भी प्रज्जवलित रही । आज यहाँ कुछ मंदिर भी बन गया है । तथागत के जीवन का 'मध्यम मार्ग' की घटना का जुड़ाव यहीं से है।

स्थान निरूपण व वर्णित कथा का अध्ययन अनुशीलन स्पष्ट करता है कि गया तीर्थ के 365 वेदी न सिर्फ नगर में वरन् राजगृह से कौलेश्वरी तक सुविस्तृत क्षेत्र में अवस्थित था। कौलेश्वरी (मगही में कुलेसरी) जैसा कि नाम से स्पष्ट है दखिनाखंड के कोल राजाओं के महाधिपति का यह प्रधान देवी आराधन केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध रहा। यह स्थल देवी तीर्थ तो है ही, जैन व बौद्ध तीर्थ के रूप में भी मान्य है जहाँ से स्वयं श्री पार्श्वनाथ व महावीर स्वामी के साथ-साथ तथागत का जुड़ाव रहा है। यहाँ भी पर्वत पर कुण्ड के सामने माँ की मंदिर है जहाँ माता जी का पालकालीन विग्रह आभायुक्त है। यहाँ हरेक राम नवमी को विशाल मेला लगा करता है। लोकाख्यानों में माता कुलेश्वरी की सात बहने बतायी गयी हैं जिनकी छोटी बहन का नाम भौरेश्वरी है। भौरेश्वरी नाम की यह देवी, जिन्हें स्थानीय "भड़ेरिया माई" भी कहते हैं। बाराचट्टी प्रखण्ड मुख्यालय से 3 कि. मी. दक्षिण पर्वत पर विराजमान है। पर्वत पर सीढ़ी व सही मार्ग नहीं होने से जाना बड़ा कष्टकर है। यहाँ मंदिर के ठीक सामने पर्वत शिखर पर ही एक भैरव मंदिर विधमान है दोनों मंदिर बहुत छोटा है जहाँ हरेक श्रावण पूर्णिमा का नजारा मेलामय रहा करता है।

गया क्षेत्र महाभारत काल में खूब चर्चित रहा और यहाँ उस जमाने में जितने भी देवालय स्थापित हुए उनमें बेलागंज की माता काली कंकाली (बुबुझा-काली) का विशेष मान है। बलिपुत्र वाणासुर की पुत्र उषा द्वारा स्थापित इस स्थान के दर्शन से इसकी प्राचीनताा का स्पष्ट आभास होता है। पूरे मंदिर परिसर में तांत्रिक महत्व के पालकालीन मूर्त्त शिल्पों का बेजोड़ संग्रह है। इसी काल के देवी मंदिर में कुर्किहार का वागेश्वरी स्थान, हड़ाही पोखर का देवी स्थान, सलेमपुर (मानपुर) का चामुण्डा स्थान, मोंक (कोंच) की माता वागेश्वरी व केसपा के तारापीठ की गणना की जाती है।

कुर्किहार का वागश्वरी स्थान प्राचीन गया के त्रय सरस्वती पूजन तीर्थों में एक है जहाँ के मंदिर के बाहरी कक्ष में हिन्दू व बौद्ध मूर्त्तियों का प्रदर्शन देखा जा सकता है। कुर्किहार गाँव के पूर्व विशाल प्राकृतिक तालाब रूक्मिणी हरण स्थल के रूप में इंगित है जिसे हड़ाही पोखर कहा जाता है यहीं पर एककक्षीय छोटी देवी मंदिर है जहाँ माँ का उत्कृष्ट मूर्त्त विग्रह है। सलेमपुर (मानपुर) की माता चामुंडा स्थान का सबसे बड़ा खासियत श्री विष्णुपद के ठीक सामने फल्गु के उस पार अवस्थित होना है। यहाँ के मनौतिस्तूप व अन्य मूर्त्तविग्रह पाल काल का प्रतिनिधित्व करते हैं। कोंच का प्रसिद्ध शिव मंदिर श्री कोचेश्वर नाथ मंदिर से कोई 3 कि. मी. दूरी पर मोंक में माता वागेश्वरी मंदिर में माता जी का विग्रह अनूठा व अद्वितीय है। डा० विजय कुमार चौधरी जैसे मूर्धन्य पुराशास्त्री इसे अप्रतिम मूर्त्त शिल्प बताते हैं। मगध के उत्कृष्ट व सुन्दरतम् मूर्त्त शिल्पों में एक यह स्थान पालकालीन कला केन्द्र के रूप में चर्चित रहा जहाँ मंदिर के बाहर व मंदिर में उस जमाने का कला-कृर्त्तियाँ आज भी प्रदर्शित हैं।

मगध में देवी आराधन केन्द्रों में चर्चित केसपा (कश्यपा तीर्थ) गया के टिकारी अनुमंडल मुख्यालय से 11 कि. मी. अन्दर है। यहाँ देवी तारा की आदमकद मूर्ति के साथ-साथ दर्जनों वेशकीमती मूर्त्त शिल्प मंदिर की शोभा को बढ़ा रहे हैं। महर्षि कश्यप द्वारा स्थापित व पूजित माँ के इस स्थान की महिमा अपरम्पार है। विश्वास किया जाता है कि जिसप्रकार माई शारदा भवानी की कृपा से आल्हा व उदल महायोद्धा हुए, माता हरसिद्धि की कृपा से कालिदास महान् हुए, माता उच्चैठ भवानी की कृपा से विद्यापति मैथिल कोकिल हुए, माता भगवती श्री बाला (अकोला) की कृपा से शिवा जी अपूर्व शौर्य प्राप्त की और माता काली की कृपा से राम ष्ण परमहंस साधक श्रेष्ठ हुए ठीक उसी तरह से केसपा की माता तारा जी की पा से पं० देवन मिश्र सम्पूर्ण मगध के महान् विदूषक हुए । आज भी माँ तारा के इस मंदिर में जो जिस भाव से आता है उसकी पूर्ति अवश्य होती है।

गया जिले के फतेहपुर प्रखंड का नीमी (नीम्मी) गाँव में अवस्थित सिंहवाहिनी माँ की मूर्त्त विग्रह भी अनूठा न अद्वितीय है। सामन्यत: माता जी की सवारी सिंह, शेर, हाथी, मोर, गरूड़ हंस, गदहा आदि हुआ करती है पर एक लेकिन यहाँ की माता जिस सिंह पर सवार है उसके चारो पैर हाथी पर है। शोधकर्त्ताओं के लिए यहाँ का मूर्त्त विग्रह आज भी प्रश्नचिन्ह बना है। यहाँ कुछ बौद्ध कला के चिन्ह भी दर्शनीय है। यह स्थान ढाढर नदी के किनारे प्राचीन टीले के पास अवस्थित एक वृक्ष के जड़ भाग में शोभायमान है। प्रो० डॉ० महेश कुमार शरण इसे बुद्ध कालीन स्थल के रूप में चिन्हित करते हैं। शेरघाटी की माता पद्मावती जिले का एक

प्राचीन देवी तीर्थ है जिसे स्थानीय सामान्य बोलचाल की भाषा में पदमौती स्थान कहते हैं। कोल-राजाओं की स्थली कोलगढ़ी के समीपस्थ विराजमान इस स्थान की प्रचीनता पालकाल तक जाती है। मंदिर में प्रवेश करते हुए ही एक शिवलिंग का दर्शन होता है जो सामान्य भू-तल से नीचे है। पूरे शेरघाटी क्षेत्र के लोगों की धर्म निष्ठा इस मंदिर के साथ जुड़ी है जहाँ से कुछ ही दूरी पर किसी जमाने में शेरघाटी का सुन्दर देवालय दुल्हिन मंदिर शोभायमान था । दुल्हिन मंदिर आज भी पर ... पर अब वो दिन कहाँ ?

ऊपर वर्णित इन द्वादश देवी पूजन केन्द्रों के साथ मकसुदपुर स्टेट की माता काली का वर्णन-विवेचन आवश्यक जान पड़ता है जहाँ किला क्षेत्र में माता काली का आदमकद मूर्त्ति बीच में विराजमान है। ऐसे यहाँ का नौरत्न मंदिर का भी विशेष महत्व है। इसके अलावे भगवती का देवीमंदिर, चण्डी स्थान का देवी तीर्थ, दुब्बा - भूरहा का देवीस्थान, कुकरा का देवी स्थान, अमावाँ का देवी स्थान, मीरगंज की देवी माँ, तिलैया की माता भगवती, पथरा की शाहिल देवी, गुरपा के गुरूपाषिनी माई, तारापुर का देवी स्थान, देवीस्थान सरवाँ, रौना का देवी मंदिर, डेमा का भगवती स्थान, विसुनपुर देवी मां मंदिर, मंझियावां का देवी मंदिर, देवी मां मंदिर पाली, देवी मंदिर खनेटापुर, सनौत का देवी स्थान, देवी स्थान पुनावाँ, हेड़गवरी माता वजीरगंज, रानी मंदिर रामेश्वर बाग, देवी स्थाना नावाँ व जमकारण्य मंदिर का भी क्षेत्र में सुनाम है।

आज गया जिला का विभाजन होते-होते इसका क्षेत्र भले ही कम गया नहीं तो औरंगाबाद जिले की उमंगेश्वरी व अम्बा माई, जहानाबाद जिले की माई अन्नपूर्णा व सिद्धेश्वरी देवी, अरवल जिले की माई सती स्थान लारी, नवादा जिले के सीतामढ़ी व रूपौ का देवी स्थान, चतरा (झारखंड) की कुलेश्वरी देवी और नालंदा जिले की मद्यड़ा शीतला भवानी व आशा देवी स्थान के साथ-साथ जरा देवी (राजगृह) की गणना प्राच्य वर्णनों में गया के अन्तर्गत् ही किया गया है।

कालजयी गया के इन उपर वर्णित देवी स्थलों का धार्मिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, पुरातात्विक और साहित्यिक संदर्भा भी कम रोचक नहीं और सच हें तो यह एक स्वतंत्र पुस्तक का अनूठा व अप्रतिम विषय है और इतना के बाद भी गया के देवी स्थलों की सूची में कुछ नाम जुट जाए तो कोई आश्चर्य नहीं ... कारण यहाँ के प्राय: हरेक पुराने गाँव देवी मंदिरों से शोभित हैं जो गाँव के लोगों का अटूट श्रद्धा व अन्यन्य विश्वास का केन्द्र स्थल बना हुआ है। जरूरत है गया के इन देवी साधना केन्द्रों व पूजन तीर्थों के बारे में और भी बहुत कुछ शोध-संदर्भ से ज्ञात कर जन सामान्य के बीच उद्‌बोधित किए जाने की ताकि गया की गौरव गरिमा के इस नवीनतम् अध्याय से जन-जन परिचित हो लाभ उठाएँ ऐसे गया नाम भी देवीमय है जहाँ के कण-कण में मातृशक्तिवर्द्धनी तत्व का समावेश की स्वीकारोक्ति स्वयं 'मत्स्य-पुराण' करता है।

'अखिलेशायन', गोदावरी (भैरोस्थान), गया
संपर्क - 9934463552

जहाँ प्रथम पिण्डदान होता है : पुण्य सलिला पुनपुन

डॉ० मनोज कुमार अम्बष्ठ

कीकटेषु गया पुण्या, पुण्यं राजगृहं वनं ।
च्यवनस्याश्रामं पुण्यं नदी पुण्या पुनः पुना ।।

(मगध में गया पुण्य स्थल है, राजगृह पुण्य वन है, महर्षि च्यवन का आश्रम (देवकुण्ड) पुण्य है और पुन:पुन नदी पुण्यमयी है।)

झारखंड से निकलनेवाली अनेक नदियों में मात्र तीन नदियाँ - मोहाने, लीलाजन और पुनपुन ही बिहार में प्रवेश करने के उपरान्त धार्मिक एवं पौराणिक रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। मोहाने और लीलाजन (निरंजना) तो बोधगया से उत्तर में गया में प्रवेश करने के पूर्व ही मिलकर फल्गु का रूप ले लेती है जबकि पुनपुन उद्‌गम से समागम तक पुनपुन के रूप में ही जानी जाती है। पुनपुन का धार्मिक महत्व मुख्यतया शेरशाह सूरी मार्ग (जी०टी०रोड) पर औरंगाबाद और सोननगर के मध्य सिरिस ग्राम के पश्चिम, अनुगह नारायण रोड स्टेशन से पश्चिम तथा पुनपुन घाट स्टेशन पर है, जहाँ पितरों के आत्मा की शांति हेतु श्राद्धकर्त्ता अपने सिर का मुंडन करवाते हैं, नदी में स्नान करते हैं और गया में पिंडदान करने से पूर्व प्रथम पिंडदान करते हैं।

उद्गम और जलधारा - झारखंड प्रान्त के उत्तर-पश्चिम में स्थित पलामू जिला के उत्तरी-पश्चिम भाग में हरिहरगंज से अलग होकर नवसृजित पिपरा प्रखंड के अन्तर्गत शोभीचक गाँव के पास कुंड नामक स्थान से एक छोटे जलश्रोत के रूप में इसका उद्गम होता है। छतरपुर का मैदान के नाम से चर्चित यह भौगोलिक क्षेत्र पहाड़ी भाग के उत्तरी किनारा का प्रदेश है, जिसकी ऊँचाई समुद्रतल से लगभग 500-1000 फीट है। वहाँ से लगभग दो किलोमीटर उत्तर आकर यह सरैया (झारखण्ड) और टंडवा (नवीनगर प्रखंड, औरंगाबाद) के बीच लगभग दस फीट चौड़ी होकर बिहार और झारखण्ड की सीमा का कार्य करती हुई बिहार में प्रदेश करती है। नवीनगर में इसका पाट लगभग पचास फीट चौड़ा है। जी० टी० रोड (एन.एच.-2) पर औरंगाबाद से पश्चिम सिरिस ग्राम के पश्चिम से गुजरते हुए यह जम्होर पहुँचती है, जहाँ छतरपुर के पूर्व से निकलने वाली बटाने नदी इसमें मिलती है और इस संगम स्थल पर कार्तिक पूणिमा को रात्रि में मेला लगता है। यह नदी प्रारंभ में सोन से पूरब और समानान्तर उत्तर दिशा में चलती है और अनुग्रह नारायण स्टेशन (पावरगंज) के बाद पूरब दिश में मुड़कर पुन: उत्तरवाहिनी हो जाती है और अंत में पुनपुन के पहले ही पूरब में मुड़कर कुछ दूर गंगा के समानान्तर चलते हुए उत्तर की ओर मुड़ती है तथा फतुहा के पश्चिम गंगा नदी में मिल जाती है। इस प्रकार इस नदी की धारा मुख्यत: उत्तरवाहिनी है जो लगभग 250 कि. मी. की दूरी तय करती है। मोरहर और दरधा इसके पहले पुनपुन की सहायक नदियाँ है। इसके दाहिनी तट पर अनेक नदियाँ मिलती है जिसमें बटाने, ढ़ावा और मदार प्रमुख हैं। ऐसे तो इस नदी में सालोभर पानी रहता है, पर बरसात में यह नदी कुछ स्थानों पर नौकागम्य रहती है। पटना जिला को इस नदी की बाढ़ से बचाने के लिए दानापुर से फतुहा तक तटबंध भी बनाया गया है। इस नदी पर ग्रैंडकॉर्ड रेलखंड पर अनुग्रह नारायण रोड के पश्चिम तथा पटना-गया रेलखंड पर पुनपुन में रेल पुल बने हैं तथा टंडवा, नवीनगर, सिरिस, ओबरा, किंजर, पुनपुन, गौरीचक तथा फतुहा में सड़क पुल बने हैं। पुनपुन की प्रासंगिकता और प्रभाव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि पुनपुन घाट और पुनपुन रेलवे स्टेशन तथा पुनपुन शहर इसी नाम से अभिप्रेत हैं।

धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्व- लोगों का मानना है कि पुनपुन नदी में तर्पण करने से दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से मुक्ति और आत्मा के शांति मिलती है। संभवत: इसी कारण यहाँ प्रथम पिंडदान का विधान है। कहा जाता है कि भगवान राम ने अपने पिता दशरथ की मृत्यु के बाद पुनपुन नदी के तट पर पिंडदान किया था। कुल लोगों का मानना है कि जिनका संबंध गंगा अथवा कावेरी के जल से रह चुका है, उनका पिंडदान पुनपुन में करने की आवश्यकता नहीं है। इस अवधारणा से पुनपुन का जल गंगा के जल के समकक्ष धार्मिक महत्व का तथा उनके विकल्प के रूप में है। एक अन्य कथा के अनुसार च्यवन ऋषि की तपस्या करने के उपरांत जल का पात्र बार-बार गिर जाता था और वे पुन: पुन: शब्द निकालते थे, जिसके कारण पुनपुन का माहात्म्य है। युवा लेखक एवं मगध के इतिहास के आधिकारिक विद्वान डा० राकेश कुमार सिन्हा 'रवि' ने अपनी पुस्तक *'धरोहर मगध के' (खंड-2)* में पुनिया नामक वेश्या के हृदय परिवर्त्तन और भक्ति जागरण तथा भगवान विष्णु द्वारा उसे वरदान के कारण पुनपुन के नामकरण की चर्चा की है। (पृ० सं० 48-51) पुनपुन की महिमा की चर्चा स्थानीय लेखकों द्वारा लघु पुस्तकों की रचना द्वारा भी की गयी है। पुनपुन में राजामान सिंह द्वारा पूजा-अर्चना तथा रात्रि विश्राम की भी चर्चा होती है। सिक्खों के नवम गुरू तेग बहादुर ने भी पुनपुन तट पर स्थित नवीनगर में भ्रमण के दौरान अपना पड़ाव डाला था, जिसमें उनके साथ चल रही उनकी माता नानकी जी का यहीं स्वर्गवास हो गया था। नवीनगर में आज भी उनकी समाधि है जिसपर 'माता नानकी जी धाम, गुरूद्वारा नवीनगर, संगत भवनों खाप, औरंगाबाद (बिहार)' अंकित है। दिनांक 11 अगस्त, 1942 ई० को पटना सचिवालय पर तिरंगा झंडा फहराने के क्रम में शहीद सात छात्रों में से एक जगपति कुमार की जन्मस्थली खँराटी भी पुनपुन तट पर ही है। पटना से 15 कि० मी० दक्षिण-पश्चिम में पुनपुन नदी के बायीं तट पर अधया नामक स्थान में 'चतुर्भुजी स्थान' नामक मंदिर है, जहाँ पर 32 सें० मी० ष्ठ 28 सें० मी० आकार के काले पत्थर के मध्य में बारह कमल दलो के बीच में विष्णु का पैर उत्कीर्ण है। पत्थर के चारो कोनों पर चक्र, शंख, गदा एवं पद्य बने हैं। यह स्थान बस से जाया जा सकता है। (प्रज्ञा भारती-XV पृ० सं० 58)

इस प्रकार, लम्बाई, चौड़ाई और जलराशि से बहुत महत्वपूर्ण न होते हुए भी अपने धार्मिक महत्व के कारण पुनपुन उस नन्ही सी हरी दूब जैसी है जो ग्रीष्म काल में भी हरी रहती है और देवताओं पर भी पूजा के समय अर्पित की जाती है ।

पश्चिमी बोरिंग कैनाल रोड, पटना (बिहार) मो० : 9430200800

श्राद्धकर्म में पंचबलि की परम्परा

श्री सुमन्त

आयुः पुत्रान् यशः स्वर्ग कीर्ति पुष्टिं बलंश्रियम् ।
पशून सौरव्यं धनं धान्यं प्रात्नुयात् पितृपूजनात् ।।

पितरों को पिण्डदान करनेवाला दीर्घायु, पुत्र-पौत्रादि, यश, स्वर्ग, पुष्टि, बल, लक्ष्मी, पशु, सुख साधन एवं धन-धन्य आदि की प्राप्ति करता है। अपने मन में इसी कामना को लेकर दूर देश से पिण्डदानी पिण्डदान करने गयाजी आते हैं। आसीन महीने के कृष्ण पक्ष के पन्द्रह दिन पितृपक्ष के रूप में जाना जाता है। इन्हीं पन्द्रह दिनों में लोग गयाजी आकर अपने पितरों का पिण्डदान करते हैं। वहीं दूसरी ओर यही आशा और उम्मीद लेकर पितर पितृलोक से पृथ्वीलोक पर पितृपक्ष में आते हैं कि हमारे पुत्र-पौत्र हमें पिण्डदान देकर संतुष्ट करेगा। ऐसी भी मान्यता है कि इन पन्द्रह दिनों में समस्त देवताओं का वास भी गयाजी में होता है।

पितृपक्ष पितरों के लिए महापर्व की तरह है। इस महापर्व में अपनी यथाशक्ति के अनुरूप पितरों के निमित श्राद्ध एवं तर्पण अवश्यक करें। "श्रद्धया दीयते यत् तत् श्राद्धम।" - अर्थात श्रद्धा से जो कुछ भी दिया जाए श्राद्ध है। पितृपक्ष में श्राद्ध स्वर्गवासी हुए पितरों की तिथि को दिया जाता है, परन्तु तर्पण प्रतिदिन किया जाता है। जिन पितरों की तिथि याद नहीं हो, उनके निमित श्राद्ध-तर्पण आसीन कृष्ण अमावस्या को किया जाता है। जो व्यक्ति पन्द्रह दिनों तक श्राद्ध-तर्पण नहीं करते, वे भी अमावस्या को ही श्राद्ध सम्पन्न करते हैं ।

पितृपक्ष में पार्वणश्राद्ध की भी परम्परा है। जो पार्वणश्राद्ध नहीं करवाते, वे कम से कम पंचबलि निकालकर भोजन कराते हैं। पिण्डदानी ब्राह्मणों को अधिक से अधिक भोजन करवाकर पुण्य की प्राप्ति चाहते हैं।

श्राद्धकर्म में अन्न के संबंध में कहा गया है -

यदनं पुरूवोडश्नाति तदन्नं पितृदेवताः ।

अपक्केनाथ पक्केन तृप्तिं कुर्यात्सुतः पितुः।।

अर्थात् जिस अन्न को मनुष्य स्वयं भोजन करता है, उसी अन्न से पितर और देवता तृप्त होते हैं। भोजन पकाया हुआ भी हो सकता है, और बिना पकाया हुआ भी । श्राद्ध के निमित तैयार भोजन को एक थाली में पाँच जगहों पर थोड़ा-थोड़ा सभी प्रकार के भोजन को परोसकर संकल्प के बाद इसे पंचबलि (गोबलि, श्वानबलि, काकबलि, देवादिबलि, पिपीलिकादिबलि) को दिया जाता है। पंचबलि देने के बाद एक अलग थाली में भोजन परोसकर ब्राह्मण भोजन का संकल्प लेकर ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है। तत्पश्चात् ब्रह्मण को अन्न, वस्त्र, द्रव्य-दक्षिणा देकर उनका आशीर्वाद लिया जाता है। शेष बचे हुए भोजन को सपरिवार अपने इष्ट-मित्रों के साथ ग्रहण किया जाता है।

पितृपक्ष में श्राद्धकर्म वैदिक विधि से ब्राह्मणों के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि पितृपक्ष में गयाजी में ब्राह्मणों की संख्या में अचानक वृद्धि हो जाती है। लेकिन ऐसा कहा गया है -

सर्वलक्षणसंयुै र्विद्याशीलगुणाविन्तैः ।

पुरूषत्रयाखिरन्यातैः सर्वं श्रा)ं प्रकल्पयेत्।।

अर्थात् सभी लक्षणों से सम्पन्न, विद्या, शील एवं सद्गुणों से सम्पन्न तथा तीन पीढ़ियों से विख्यात ब्राह्मणों से ही श्राद्ध सम्पन्न करवाना चाहिए । यही कारण है कि श्राद्धकर्म गयाजी के पण्डों द्वारा ही सम्पन्न करवाया जाता है, जिसके कई पुस्तों का निवास गयाजी है ।

सदस्य, मगही अकादमी, पटना
सम्पर्क - हनुमाननगर, गया

मोक्षप्रदायी पक्ष : पितृपक्ष

डॉ० शिववंश पाण्डेय

आश्विन महीने का पूरा कृष्ण पक्ष सनातन धर्मावलम्बियों के पितरों के लिए मोक्ष प्रदायी पक्ष है। इस 15 दिनों की अवधि में जिस तिथि को पूर्वजों का लोकान्तरण हुआ था, उस तिथि के दिन गया में पितरों को पिंडदान करने से उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक हिन्दू का विश्वास है कि गया में पिंडदान कर वह अपने तीन पुरखों को मोक्ष दिलाता है और इस प्रकार वह पितृ (पितर) ऋण से मुक्त हो जाता है। धर्मशास्त्रों में यह भी कहा गया है कि विष्णु भगवान ने ऐसे 50 तीर्थों के नाम दिए हैं जहाँ पिंडदान करने से वे पितरों के ऋण से मुक्त हो जाते हैं। इन 50 तीर्थों में गया पवित्रतम माना जाता है। इसलिए ही देश के कोने-कोने से हिन्दू धर्ममतावलंबी पितृपक्ष में पितरों को पिंड देने गया पहुँचते हैं।

पिंडदान करने की परम्परा का प्रारंभ महात्मा बुद्ध के समय से ही माना जाता है। ऐसा लोगों का विश्वास है कि महात्मा बुद्ध ने गया में पिंडदान किया था। कुछ ब्राह्मण ग्रंथों में भी गया में पिंडदान करने का उल्लेख मिलता है। रामायण के अनुसार भगवान श्रीराम भी जगज्जननी सीता के साथ पितृपक्ष में पिंडदान करने गया पधारे थे। इस सम्बन्ध में आगे की कथा इस प्रकार है। पिंडदान करने के पूर्व श्रीराम पिण्ड की सामग्री लाने चले गए थे, इसी बीच दशरथ जी का हाथ फल्गु नदी के जल के बाहर आया और आवाज आई कि सीते ! तुम स्वयं पिंड दे दो, राम की प्रतीक्षा मत करो, मैं बहुत भूखा हूँ। द्रवित हो माँ सीता ने फल्गु की बालुकाराशि का ही पिंड बनाकर उन्हें दे दिया। बाद में लौटने के बाद जब राम ने पिंड देने का उपक्रम किया तो पिंड ग्रहण करने वाला श्री दशरथ का हाथ सामने नहीं आया। अंत में माँ सीता ने उन्हें पूरी घटना से अवगत कराते हुए, चार साक्षियों को समर्थन में खड़ा कर दिया। ये चार साक्षी थे - वहाँ उपस्थित ब्राह्मण, फल्गु नदी, पास का बरगद का पेड़ औरा पास खड़ी गाय। बरगद वृक्ष के अतिरिक्त अन्य तीनों साक्षियों ने सीता जी की बात को नकारदिया। ब्राह्मण ने और दक्षिणा के लोभ, फल्गु नदी ने और पिंड प्राप्त करने की लालच और गाय ने भगवान के भय से माँ सीता की बात का समर्थन नहीं किया। कुपित होकर सीता जी ने फल्गु नदी को शाप दे दिया और उन्हीं के शाप का परिणाम हुआ कि फल्गु नदी से जल लुप्त हो गया और फल्गु मात्र बालुका भूमि बनकर रह गयी। बरगद के वृक्ष ने सीता जी की बात का समर्थन करते हुए सत्य का साथ दिया था, अत: सीता माँ ने उसे अमर होने का वरदान देते हुए आशीर्वाद दिया कि बरगद का वह वृक्ष 'अक्षयवट' नाम से विख्यात होगा और अन्य वृक्षों की तरह उसकी पत्तियाँ पतझड़ ऋतु में भी नहीं गिरेगी और वह सदा हराभरा बना रहेगा। 'अक्षय' का अर्थ होता है 'अमर' औरा 'वट' का अर्थ होता है 'बरगद'। इस प्रकार अक्षयवट का अर्थ हुआ अमर वटवृक्ष। आज भी शापित फल्गु नदी और अमरत्व प्राप्त 'वटवृक्ष' साक्षी स्वरूप विद्यमान हैं।

पिछली तीन पीढ़ियों के पूर्बजों को 'मोक्ष' मिले, इसलिए ही सनातन धर्म के अनुपोषक पवित्रतम तीर्थ गया आकर पितृपक्ष में पिंडदान करते हैं। अत: आवश्यक और समीचीन प्रतीत होता है कि हम 'मोक्ष' के अन्वर्थ को भी ठीक से समझ लें।

'मोक्ष' शब्द मोक्ष्+धञ् से बना है जिसका अर्थ है - मुक्ति, छुटकारा। विशेष संदर्भ में अर्थात् प्रस्तुत प्रसंग में इसका अर्थ होता है - परम मुक्ति, आवागमन अर्थात् पुनर्जन्म के चक्कर से आत्मा की मुक्ति, भव-बन्धन से मुक्ति, सांसारिक तापों और भौतिक बन्धनों से मुक्ति।

मोक्ष के अन्य पर्याय हैं- कैवल्य, निर्वाण, मुक्ति और अपवर्ग। "सांख्य दर्शन के अनुसार मोक्ष, कैवल्य का पर्याय है। अविद्या का विनाश ही मोक्ष है। विविध दुखों का अनुभव ही अविद्या है। अविद्या का विनाश विवेकज्ञान से होता है। विविध दुखों के आत्यन्तिक विनाश को मोक्ष कहते हैं। 'मोक्ष' भी चार प्रकार के कहे गए हैं - 1. सालोक्य, 2. सामीप्य, 3. सारूप्य और 4. सायुज्य। 'सालोक्य' मोक्ष का अर्थ है - भगवान के लोक में पहुँचना, 'सामीप्य' मोक्ष का अर्थ है - भगवान के समीप पहुँचना, 'सारूप्य' मोक्ष का अर्थ है - भगवान का ही रूप हो जाना और 'सायुज्य' मोक्ष का अर्थ है भगवान में मिल जाना अर्थात् भगवान से एकाकार हो जाना, तादात्म्य सम्बंध स्थापित कर लेना। इसे ही न्यायशास्त्र में 'कैवल्य' कहा गया है। इसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए संत-महात्मा आजीवन साधना करते रहते हैं।

हमारे शास्त्रों में चार पुरूषार्थ माने गए हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । 'मोक्ष' ही आध्यात्मिक साधना का साध्य है जिसे प्राप्त करने के लिए भारतीय दर्शनग्रन्थों एवं धर्मग्रंथों में अनेक उपाय बताए गए हैं। भौतिक गुणों से ग्रसित सांसारिक प्राणी साधना के कठोर अभ्यास और उपासना के कठिन मार्गों का अनुसरण कर जब तक 'मोक्ष' की स्थिति तक नहीं पहुँच पाते हैं और उनका इसी

स्थिति में देहान्तरण हो जाता है तो उनके वंशजों को इन्हें मोक्ष दिलाने के लिए गया में पिंडदान करने का निर्देश धार्मिक ग्रन्थों में हुआ है। जिस प्रकार कलियुग में केवल 'नामजप' से जीवित प्राणी को मोक्ष तक पहुँचने का सुगम मार्ग उपलब्ध है उसी प्रकार दिवंगत प्राणी को मोक्ष दिलाने के लिए पवित्रतम नगरी गया में पिंडदान करने का धार्मिक विधान बताया गया है।

आवागमन के चक्कर से मुक्त होना ही 'मोक्ष' है और ''जनमत मरत दुसह दुख होइ'' की यंत्रणा से छुटकारा पाने का यही एक अमोध उपचार है। अत: पितृपक्ष में गया में पिंडदान कर हम अपने पूर्वजों के ऋण से मुक्त हो सकते हैं और उन्हें आवागमन के चक्कर से छुटकारा दिला सकते हैं। सनातन धर्ममतावलबीं इसी विश्वास के साथ प्रति वर्ष लाखों की संख्या में पितृपक्ष में गया आकर पिंडदान क्रिया सम्पन्न कर अपने पितर-ऋण से मुक्त महसूस करते हैं।

लीलाधाम, 3/307 न्यू पाटलिपुत्र कॉलोनी, पटना

मृत्यु के बाद भी मृतात्मा से जुड़ा रहता है हमारा रिश्ता

श्री कंचन

सनातन धर्म में इस निर्धारित कार्य को संस्कार के नाम से संबोधित किया गया है। संस्कारों के इस कर्म में बालक के गर्भ में आगमन के समय पुंसवन संस्कार, जन्म लेने के उपरान्त नामकरण-चूड़ामणि संस्कार, बालक जब थोड़ा बड़ा होता है, अर्थात् पाँच से पंद्रह वर्ष की अवस्था तक उपनयन (जनेऊ के समय का) संस्कार कर, उसे शूद्र से द्विज बनाकर पूर्ण विद्यार्जन का अधिकार प्रदान किया जाता है। यौवनावस्था आते ही विवाह संस्कार किया जाता है। इस प्रकार विभिन्न संस्कारों से गुजरता हुआ व्यक्ति जब वृद्धावस्था को प्राप्त कर अपने जर्जर व रोग ग्रस्त शरीर का त्याग कर किसी अन्य शरीर को धारण करने के लिए प्रस्थान करता है। उसके द्वारा त्यागे गये शरीर को हिन्दू धर्मानुसार अग्नि को समर्पित कर कपाल-क्रिया संस्कार किया जाता है, अत्यधिक व्यवस्थित है हमारी सनातन धर्म की संस्कृति व अत्यधिक उदार व सहृदय भी। मृत्यु के बाद भी हमारा रिश्ता उस हुतात्मा से जुड़ा रहता है। उसके प्रति तज्ञता ज्ञापित करने व मुक्ति के लिए श्राद्ध-कर्म संस्कार संपन्न किया जाता है।

प्राचीन धर्म ग्रंथों में पितरों को सम्मान देने का विशेष उल्लेख मिलता है। इनमें 'पितृ' का अर्थ है पिता, किन्तु ऋग्वेद में पितर शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है- 1. व्यक्ति के मृतक पूर्वज व 2. प्राची पूर्वज, जो दूसरे लोक के अधिवासी हैं। स्कंद पुराण में पितरों की नौ श्रेणियाँ बतायी गयी हैं, इनमें अग्रिप्वाता, वर्हिषद, आज्यपा, सोमपा, रश्मिपा, उपहूता, आयन्तुन, श्राद्ध भुज व नादी मुख। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि मानव संतति उत्पन्न कर मृत्यु के बाद पितृ बन जाता है और पितर रूप में अपने सत्कर्मों के बल पर देवत्व प्राप्त करता है।

इस प्रकार देखें तो पितृ वर्ग सर्वथा एक अलग वर्ग है, जो अत्यधिक पवित्र व उच्चे कोटि का वर्ग है। जिस प्रकार देव वर्ग, ऋषि वर्ग, किन्नर वर्ग आदि उच्चकोटि की योनियाँ हैं। पितृ वर्ग की तुलना साक्षात् भगवान ब्रह्मा से की गयी है और यह वर्णित किया गया है कि भगवान ब्रह्मा भी इनकी संतुष्टि का प्रयास करते हैं। उपरोक्त नौ प्रकार के पितृ वर्गों में सौमस नामक पितर वर्ग से ही संपूर्ण प्रजा सृष्टि का जन्म हुआ माना गया हे। शास्त्रों में स्पष्ट किया गया है पितर श्रेणी धारण करने पर पूर्वजों की शांति व तृप्ति के लिए श्राद्ध कर्म किया जाता है। 'ब्रह्म पुराण' के अनुसार जो कुछ काल, पात्र व स्थान के अनुसार विधि-विधान पूर्वक पितरों को लक्ष्य करके श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मणों को दिया जाता है, वह श्राद्ध कहलाता है। गरूड़ पुराण व अन्य पुराणों में स्पष्ट किया गया है कि पितरों को श्राद्ध में दिये गये पिंडों से पितर संतुष्ट होकर अपने वंशजों को जीवन, संतति, संपत्ति, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष आदि सभी सुख देते हैं । श्राद्ध कर्म की उत्पति के बारे में धर्म शास्त्राकारों का कहना है कि प्राचीन समय में मनुष्य तथा देव इसी लोक में रहते थे। देवगण 'यज्ञों' के फलस्वरूप स्वर्ग जा सके, वह देवों तथा ब्रह्मा के साथ निवास करते हैं, इसमें जो लोग पीछे रह गये, उनके लिए मनु ने श्राद्ध क्रिया पद्धति प्रारंभ की, जो पितरों को मुक्ति व आनंद प्रदान करने में सहायक हुए, इसके बाद भी एक शंका रह जाती है कि हमारे परिवार के मृतक सदस्य जो दूसरे स्थान पर जन्म ले चुके होंगे फिर वे हमारे द्वारा किये गये श्राद्ध को कैसे ग्रहण कर पायेंगे ?और, यह प्रश्न तर्क संगत है, उसका उत्तर यही पितृ वर्ग है, जो नौ वर्गों में विभाजित है और संपूर्ण रूप में दिव्य पितृ वर्ग कहलाता है। किस परिवार के मृत सदस्य मर्त्य पितृ वर्ग के सदस्य कहलाते हैं, जिसको यह दिव्य पितृ वर्ग ही श्राद्ध की सूक्ष्म भावना या अंश पहुँचाने में समर्थ होता है और किसी परिवार के मृत पूर्वज का जहाँ जन्म हो चुका है, वहाँ तक उसे नि:स्वार्थ भाव से ले जाने का कार्य करता है।

यह सृष्टि व्यक्ति की आँखो के समक्ष दिखाई पड़ती है। अपने अस्तित्व में यह केवल उतनी ही नहीं है। सूक्ष्म जगत में अनेकानेक भेद छुपे हैं, जिन्हें तर्क व बुद्धि से नहीं, अपितु चेतना, साधना व प्रज्ञा से ही अनुभव किया जा सकता है। पितृवर्ग का संपूर्ण क्रिया-कलाप भी इसी प्रकार की घटना है। किसी व्यक्ति की जीवात्मा का पोषण उसके वंशजों द्वारा किया होता है और कहीं नहीं। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि जो क्रिया, श्राद्ध, सम्मान आज हम अपने पूर्वजों के प्रति अर्पित करें, कल को वही क्रिया हमारे वंशज भी हमारे साथ करेंगे। श्राद्ध का अर्थ केवल ब्राह्मण को भोजन कराने मात्र से नहीं होता है। यह तो श्रद्धा व्यक्त करने का सबसे स्थूल रूप है। परिवार के मृत सदस्य प्रेत योनि में ही हों, वह प्रेतयोनि में न होते हुए भी जन्म व मरण के बीच एक विचित्र सी अतृप्तावस्था में रह जाते हैं। जो प्रेतयोनि में चले जाते हैं, वह परिवार के सदस्यों द्वारा उनकी मुक्ति के उपाय न करके भयंकर उत्पात मचाकर रख देते हैं, अत: इनकी मुक्ति दिलाकर शांति दिलाना जरूरी है, जिसके लिए श्राद्धकर्म आवश्यक है।

ब्यूरो प्रमुख, प्रभात खबर, गया

भारतीय संस्कृति का अंग है पितर-पूजा

श्रीमती ममता मेहरोत्रा

भारतीय संस्कृति अनादि काल से चली आ रही है। यही संस्कृति ऐसी है, जिसने समस्त मनुष्य जाति के विकास और उन्नति की ओर ध्यान दिया है। जिस संस्कृति के अन्तर्गत सब के कल्याण की भावना निहित हो, वहीं संस्कृति श्रेष्ठ संस्कृति है।

संसार में हम मनुष्य जाति को दो ही स्वाभाविक भागों में बाँट सकते हैं। या तो सत्री और पुरुष या सज्जन और दुर्जन। स्त्री-पुरुष में भी सज्जन ओर दुर्जन दोनों मिलते हैं; अत: असली भेद सज्जन और दुर्जन का ही रह जाता है। पूर्वी-पश्चिमी, हिन्दू-मुलसमान, ईसाई-सिक्ख, काले-गोरे आदि भेद अधिकांशत: परिस्थिति जन्म है।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि मनुष्य-मात्र में कोई भेद नहीं है; शारीरिक रूप में सब समान हैं। किन्तु सज्जन-दुर्जन भेद चारित्रिक गुणों से संबंध रखता है। अत: संस्कृति को भी हम दो ही भागों में बाँट सकते हैं- एक सज्जन-संस्कृति और दूसरी दुर्जन संस्कृति।

यहाँ प्रश्न उठता हे कि हम किसे सज्जन माने और किसे दुर्जन। शास्त्रों में तथा हमारे आर्ष ग्रंथों में इस पर विचार किया गया है। इस संबंध में संसार के प्राय: सभी धर्माचायो तथा गुरुओं भी पर्थष्ट रूप से प्रकाश डाला है। श्रीमद्भागवत्गीता में जिसे दैवी-सम्मपत्ति और आसुरी सम्पत्ति कहा है- वही सही अर्थ में सज्जन और दुर्जन संस्कृति है। दैवी सम्पदा से सम्पन्न व्यक्तियों का प्रधान लक्षण हैं दूसरों के सुख-दुख का पहले ध्यान रखना। आसरी-सम्पदा को प्राप्त व्यक्तियों का लक्षण है अपनी स्वार्थ-सिद्धि सबसे पहले करना। दूसरों को दुखी, अपमानित, शोषित करके भी जैसी भी हो अपने स्वार्थ की सिद्धि कर लेनी है। अत: जो भारतीय संस्कृति के उपासक हैं, उनका पहला कर्त्तव्य है सज्जन-संस्कृति को अपनाना और दुर्जन संस्कृति से दूर रहना। हमें दूसरों को दुर्जन नहीं कहना चाहिए। दूसरों को कुछ कहने की अपेक्षा श्रेष्ठ यही है कि हम स्वयं सज्जन संस्कृति अपनायें।

आज पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के चकाचौंध में हम इतने डूब गए हैं कि इस ओर ध्यान ही नहीं देते, केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहते हैं। हमें इससे बचना होगा और अपनी भारतीय संस्कृति, जो सज्जन संस्कृति है उसे अंगीकृत करना होगा। हमारी संस्कृति की यह विशेषता है कि हम अपने स्वार्थ की अपेक्षा दूसरों की सेवा, समाज-सेवी आदि पर अधिन जोर देते हैं। स्वार्थ की अपेक्षा हमें परमार्थ पर ध्यान देना चाहिए। संस्कृति के इस मूलभाव को हम तभी समझ सकते हैं, जब हम अपने को अध्यात्म से जोड.कर रखेंगे। अध्यत्म्य हमें समाज से, समष्टि से और भगवान से जुड़ने का मार्ग बताता है। जो मार्ग, जो उपदेश, जो विधि हमें भगवान की तरफ ले जाती है, वही सज्जन संस्कृति है, भारतीय संस्कृति है।

पितृपक्ष के अवसर पर हम जो पितर-पूजा करते हैं, अपने दिवंगत पूर्वजों को आत्मा की चिर-शान्ति के लिए श्राद्ध-कर्म तथा पिण्डदान और तर्पण करते हैं, वह हमारी भारतीय संस्कृति का अंग है। कर्मकाण्ड के इन अनुष्ठानों के माध्यम से हम केवल उनके साथ नहीं; अपितु भगवान के साथ जुड़ते हैं। यही कारण है कि आज भी हम इस परम्परा को प्रेय और श्रेय समझते हैं।

डी.ए.वी. शास्त्री नगर, पटना

तीर्थों का प्राण-गया जी

डॉ० राम सिंहासन सिंह

धर्म और अध्यात्म की दृष्टि में भारत की भूमिका अग्रगण्य है। धर्म ही मानव और पशु में अन्तर स्थापित करता है। भारत की भूमि मनीषियों और साधकों की रही है। भारत तीर्थों का देश है, भारत धर्मों का देश है। गंगा की पवित्रता यमुना की महानता, मंदाकिनी की पौराणिकता, सरयू की आध्यात्मिकता, गोदावरी की ऐतिहासिकता जिस प्रकार भारत की संस्कृति को समुज्ज्वल बनाती है, उसी प्रकार गया की फल्गु सभी नदियों की उज्ज्वलता अपने में समेट कर भारत की अनेकता में एकता को और समृद्ध करते हैं, और गया को गौरवान्वित करती है।

गया को तीर्थों का प्राण कहा जाता है। चार पुरुषार्थों में अन्तिम मोक्ष की प्राप्ति का स्थान गया को ही माना गया है। धर्म अर्थ और काम की पूर्णता तभी सार्थक है, जब मोक्ष सुलभ हो, और गया-तीर्थ में सहज ही प्राप्त होता हैं गया में पिण्डदान से पितरों को सर्वतोभावेन शान्ति मिलती है।

ऋषिभ्यः पितरो जाता पितृभ्योदेव दानवाः।
देवेभ्यस्तु जगत्सर्व चरं स्नाण्वनु पूर्वशः।।

मनुस्मृ. 3/201

अर्थात् ऋषियों पितरों की और पितरों देव दानवों की तथा देव-दानवों से चराचर जगत की उत्पत्ति हुई है।

उत्पत्ति के पश्चात् चराचर जगत पुनः ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। जबतक ये पूर्णतः लीन नहीं हो जाते, तबतक विभिन्न लोकों में भटकते रहते हैं। वायुपुराण में मुक्ति के चार साधन बताये गये हैं। ब्रह्मज्ञान- गयाश्राद्ध, गोगृह में मरण तथा कुरूक्षेत्र का वास। इन चारों में गया श्राद्ध को हीं सबसे सरल उपाय माना गया है। इस उपाय को करने से मनुष्य पितृऋण से मुक्त हो जाता है।

भारत के मानचित्र पर गया का विशिष्ट स्थान है। छोटी-छोटी पाहड़यों से घिरा, प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा से अच्छादित प्रत्येक पहाड़ियों पर मंदिर, पूर्व भाग में निरंजना अंतः सलिला फल्गु नदी प्रवाहित, कल-कल, झर-झर करते झरने, विष्णु-पद का विशाल ऐतिहासिक मंदिर तो ब्रह्मयोनि पर्वत पर ब्रह्मा का मन्दिर इसकी ऐतिहासिकता, पौराणिकता तथा धार्मिकता में चार चाँद लगा रहा है। गया एक साधना तपः भूमि तथा तंत्रसाधना के क्षेत्र में भी अग्रगण्य रहा है। भगवान विष्णु का चरण-चिन्ह् भगवान बुद्ध के ज्ञानार्जन की भूमि, महर्षि कपिल मुनि का साधना-स्थल इसके विराटत्व तथा गरिमा की गाथा आज भी अंकित है। नदी के किनारे और पहाड़ियों से घिरा हुआ, बल्कि एक प्रकार से पहाड़ियों पर बसा हुआ, साधना और तप के लिए प्राचीन काल से उपयुक्त रहा हैं यही कारण है कि महान तपस्यिों एवं साधकों ने यहाँ साधना की है।

महाभारत में गया को एक उत्कृष्ट और महत्व का तीर्थ माना गया है और सभी को एक बार यहाँ की यात्रा आवश्यक रूप से करने का निर्देश दिया गया है। कोई स्थान तीर्थ का दर्जा तभी प्राप्त करता है, जब वहाँ कभी ने साधना करके सिद्धि प्राप्त की हो, अवतार हुआ हो या अवतारी पुरुष की लीला सम्पादित हुई हो, किसी देवता विशेष का घटना क्रम में वास-स्थान रहा हो। साथ में कोई नदी या पहाड़ हो तो उसकी प्रमाणिकता एवं उपादेयता और बढ़ जाती है। वह स्थान सुरम्य हो जाता है और अपनी गुणवत्ताओं के कारण, सिद्धि, पुण्य और पद लोक का वाहक बन जाता है।

महाभारत के अनुसार गय नामक एक राजर्षि हुए थे। अमूर्तरमा के वह पुत्र थे। वह बड़े दिव्य और पवित्र थे। उन्होंने एक बहुत बड़ा और अपूर्व यज्ञ सम्पन्न किया, जिसमें लम्बे समय तक हविष्य, भोजन और दान से देवताओं ओर मनुष्यों को तृप्त किया। ऐसा यज्ञ पहले किसी ने नहीं किया था और शायद बाद में भी कोई न कर पाए। इस प्रकार के यज्ञ गय ने ब्रह्मसरोवर के समीप अनेक बार किए। महाभारत में इस यज्ञ का विस्तृत वर्णन है। इससे इतना निष्कर्ष को निकलता है ही है कि महाभारत काल में गया साधना-स्थल के रूप में विख्यात था, जहाँ साधना करने से सिद्धि शीघ्र मिल जाती है। ऐसा स्थल सिद्ध-स्थान भी कहा जाता है, इसलिए कि जहाँ जाने मात्र से कुछ न कुछ लाभ सभी को मिल जाता है और जो साधना करते हैं उन्हें पूरा मिलता है। गय का यह यज्ञ साधना का ही एक प्रकट रूप है। राजर्षि गय का यज्ञ अपूर्व था, अर्थात् गय की साधना अपूर्व थी। गया के एक पर्वत का नाम महाभारत में गय पर्वत बताया गया है। गय की साधना के कारण ही उस पर्वत का नाम गय के नाम से सम्बद्ध हो गया।

यों तो गया सभी क्षेत्रों में अग्रगण्य है। किन्तु गया का महत्व श्राद्ध के कारण ज्यादा है। इसकी चर्चा विभिन्न पुराणों, रामायण तथा महाभारत में की गयी है। आज भी श्राद्ध के लिए पवित्रतम स्थान माना जाता है, और श्राद्ध चाहे कहीं अन्य स्थानों पर भले हीं किया गया हो, किन्तु गया में किये बिना पूर्ण नहीं होता है।

प्रधानाचार्य, रामलखन सिंह यादव कॉलेज, गया

मगध में पिंडदान के सात स्थान

श्रीमती चंचला रवि

प्रत्येक वर्ष भाद्रपद पूर्णिमा से आश्विन माह के अमावस्या तक चलने वाला पितृपक्ष के दौरान देश विदेश के श्रद्धालुओं का गया आगमन होता है। मोक्षनगरी गया में इस दौरान दूर देश के यात्री आकर अपने कर्म कृत्य से पितृऋण से उऋण होते हैं। एक जमाने में यहाँ पिंडदान स्थाल अर्थात् पिंडवेदियों की संख्या 365 थी पर आज ये पचास के करीब हैं उस पर भी तीन का सर्वाधिक मान है जो हैं श्री विष्णुपद, फल्गुजी और अक्षयवट ।

गया और गया के आसपास दूसरे शब्दों के कोल्हुआ पर्वत से राजगृह तक की भूमि में विस्तृत इन पिंडवेदी स्थलो में कितने ही आज उपेक्षा के शिकार हैं पर गया सहित मगध के जिन स्थानों में कलियुग में भी पिंडदान कार्य का शास्त्रोक्त महत्व है उसमें सात का विशेष मान है।

मागधी पिंडदान के सप्त स्थलों में पुनपुन की गणना पहले स्थान पर की जाती है। यह पुनपुन पटना जिले में अवस्थित गया – पटना रेलखंड पर पुनपुन घाट के रूप में उपस्थित है जिसे गया श्राद्ध की 'प्रथम वेदी' के रूप में अभिहित किया जाता है। मागधी पिंडदान के द्वितीयक स्थल के रूप में 'जम्होर' का नाम आता है जो औरंगाबाद जिले में पुनपुन के ही किनारे है। जहाँ तक जम्होर नाम का सवाल है धर्म पंडितों का मानना है कि यहाँ के श्राद्ध पिंडदान से यम (मगही में 'जम') तृप्त हो श्राद्ध पिंडदान कर्त्ता को अशेष आशीर्वाद से विभूषित कर प्रगति पथ का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

मागधी पिंडदान के तीसरे स्थान के रूप में गोबरिया कूप का नाम लिया जाता है जो गया–नवादा रेलखंड पर करजरा गाँव से आधे कि. मी. दूरी पर राजगीर पहाड़ी के नीचले भूमि में विराजमान है। शास्त्र वर्णित है कि राजगीर के 52 कुण्डों में प्रथम कुंड यही गोवर्द्धन कुण्ड है जिसे स्थानीय गोबरिया कुंड कहते हैं। इसकी गणना मगध के 52 पुराण प्रसिद्ध कूपों में भी की जाती है।

मागधी श्राद्ध पिंडदान के चौथे केन्द्र के रूप में गुरूआ प्रखंड के भूरहा का नाम आता है जो भूरहा नदी के किनारे भुग्राहा तीर्थ के रूप में उपस्थित है। आज भी यहाँ पितृपक्ष के दिनों में श्राद्ध पिंडदान का कार्य होता है जहाँ सालो भर एक छिद्र से पानी निकलता रहता है। इसी के ठीक पास ही प्रख्यात पुरास्थल दुब्बागढ़ और आगे मंडा पर्वत है।

मागधी श्राद्ध पिंडदान के पाँचवे स्थल के रूप में देवकुण्ड की गणना की जाती है जो औरंगाबाद क्षेत्र के हसपुरा प्रखंड में है। ऋषि च्यवन की साधना स्थली देवकुण्ड में विशाल प्राकृतिक सरोवर में आज भी श्राद्ध पिंडदान होता है। इसी के साथ कहीं–कहीं मधुश्रवा की भी गणना की जाती है।

बराबर पर्वत के पातालगंगा को मागधी श्राद्ध पिंडदान के षष्ठ स्थल के रूप में रेखांकित किया जाता है जो महाभारत कालीन प्रसिद्ध तीर्थ है। यह जहानाबाद जिले में है ऐसे एक पातालगंगा गया में भी गोदावरी पर्वत पर आकाशगंगा क्षेत्र में है। शास्त्रों में जिन 52 पिंड स्थानों का वर्णन है उनमें अरवल के किंजर को प्रमुख स्थान प्राप्त है और यही मागधी श्राद्ध पिंडदान का सप्तम् स्थल है। ऐसी चर्चा है कि पुनपुन नदी के किनारे अवस्थित किंजर में राजा दशरथ ने पिंडदान कर अपने पूर्वजों को तृप्त किया था ।

इस तरह मागधी पिंड प्रदान के ये सप्त स्थल बड़े प्राचीन है जहाँ श्राद्ध पिंडदान की परम्परा किसी न किसी रूप में आज भी जीवन्त है ।

आखिलेशायन
गोदावरी (भैरोस्थान) गया

श्राद्ध गया में ही क्यों ?

श्री पदमाकर पाठक

भारतीय संस्कृति में पूर्वजों एवं पितरों को आदर श्रद्धा देने की एक विशिष्ट सनातन व्यवस्था है। इस व्यवस्था के तहत मनीषियों ने श्राद्ध एवं तर्पण की भी व्यवस्था बनायी है। इसके अन्तर्गत की पितर–पूजा तथा श्राद्ध–कर्म का विधान है। यह वर्ष में आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में होता है। गया में श्राद्ध करने का विशेष महत्त्व है। प्राचीन समय में 'गय' नामका एक व्यक्ति था, जो अपनी उग्र तपस्या से इतना शक्तिशाली हो गया कि उसके स्पर्श करने वाला व्यक्ति भी स्वर्ग जाने लगा । इससे यमराज एवं देवता चिन्तित रहने लगे । सभी देवगण मिलकर चिन्तन मनन कर विष्णु को 'गय' के पास जाकर उसे प्राण का उत्सर्ग करने के लिए अनुरोघ किया। विष्णु भगवान के समझाने पर 'गया अपना प्राण त्याग का विचार बनाया, उसे उत्तर से दक्षिण की ओर लिटाया गया, लेकिन उसका सिर काँपता रहा । तब ब्रह्माजी ने उसके सिर पर एक शिला रख दिया । फिर भी कॉपना नहीं रूका तब सभी देवता उस शिला पर खड़े हो गये और तब 'गय' की सद्गति हो गई । 'गय' से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने उसे वरदान दिया कि यह स्थान तुम्हारे नाम से जाना जायगा और देवता लोग यहाँ विश्राम करेंगे। और जो लोग यहाँ पिण्ड–दान आदि करेगा वह पूर्वजों सहित ब्रह्मलोक जायेगा।

गया गमन मात्र से व्यक्ति पितृ–ऋण से मुक्त हो जाता है। इस क्षेत्र में भगवान विष्णु पितृदेवता के रूप में विराजमान रहते हैं गया में कोई ऐसा स्थान नहीं है जो तीर्थ न हो। यहाँ सभी तीर्थों का सान्निध्य है। अत: गया तीर्थ सर्वश्रेष्ठ है। पूर्वकाल में भी गया नगरी में लगभग चार हजार छोटे बड़े मन्दिर थे । प्राय: इस क्षेत्र के हर मुहल्ले में कोई न कोई मन्दिर है। साथ पिण्डदान के साथ तर्पण के लिए सरोबरों की संख्या भी अधिक थी। मुख्य सरोवर तो अभी भी है एवं कुछ अतिक्रमण के कारण नष्ट प्राय: हो गए हैं।

गया क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति अपने पितरों की मुक्ति की इच्छा कर के जाता है तो उसके पितरों की मुक्ति हो जाती है। पितर लोग ऐसी कामना करते हैं कि मेरे कुल का कोई भी व्यक्ति गया पहुँच कर श्राद्ध कर देता हमारी मुक्ति हो जायेगी ।

मुक्ति का अर्थ आवागमन से मुक्त होना, पुन: जन्म मृत्यु से परे हो जाना ।

गया श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपने माता–पिता के कुल सात पीढ़ियों का उद्धार कर स्वयं भी परम गति को प्राप्त करता है –

गायन्ति पितरो गाथां कीर्तयन्ति मनीषिणः ।
एक्टव्या बहवः पुत्रा शीलवन्तो गुणान्विताः ।।
तेषां तु समवेतानां यद्ये कोडपि गयां ब्रजेत ।
गयां प्राप्यानुषगेण यदि श्राद्धं समाचरेत ।।
तारिताः पितरस्तेम सयाति परमां गतिम्।

इस प्रकार गया क्षेत्र में पिण्ड दान का महत्त्व अनेक, पुराणों में भी आया है –

वायुपुराण के अनुसार –

गया प्राप्तं सुतं दृष्टा पितृणाभूत्सवो भवेत् ।।

श्राद्ध करने की इच्छा से पुत्र को 'गया' में आया देखकर पितरों के लिए आनन्द उत्सव होता है ।

अत: 'गया' पितृश्राद्ध अवश्य ही करें । साथ ही उनके याद में पर्यावरण रक्षा हेतु आम, पीपल, नीम, आबला, वरगद आदि का वृक्ष लगाकर पुण्य का भागी बने ।

गायत्री शक्तिपीठ
नई सड़क, रामसागर (पूर्वी) गया

परम लक्ष्य की सिद्धि के साधन

श्री अशोक कुमार सिन्हा

आज हमारा जीवन काफी उन्नत हो गया है। इस उन्नत जीवन में मनुष्य के अन्तर्गत स्वार्थ-परता और आत्म केनिद्रता की भावना प्रबल हो उठी है। पाश्चात्य देशों में इसके यर्थष्ट प्रमाण विद्यमान हैं। यह स्वभाविक है कि यदि हम बाह्य सम्पदा के आदर्श को केन्द्र बनाकर अपने ज्ञान और शक्ति का विकास करते हैं, तो उससे स्थूल दृष्टि में कुछ समय के लिए जातिविशेष और सम्प्रदाय विशेष की आर्थिक उन्नति, विषय-सुखों की प्रचुरता तथा राष्ट्रीय प्रभाव की वृद्धि भले ही देखने को मिले; परन्तु उसके साथ ही एक वर्ग का दूसरे वर्ग का, एक सम्प्रदाय के साथ दूसरे सम्प्रदाय का संघर्ष स्वाभाविक नियमानुसार अनिवार्यत: उत्पन्न हो जाता है। योग के आदर्श को केन्द्र बनाकर जो उन्नति होती है। वह प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्दिता और संघर्ष के अन्तराल में ही होती है। और इस प्रकार की उन्नति कभी भी सर्वसाधारण की उन्नति नहीं होती। समस्त व्यक्तियों तथा सारे दलों-सम्प्रदायों के सुख, ऐश्वर्य और प्रभुत्व की कामना की पूर्त्ति किसी भी नीति अथवा कौशल के द्वारा सम्भव नहीं है।

प्रत्येक मुनष्य को अन्न, वस्त्र और घर आदि की आवश्यकता होती है। हरेक को सुख, ऐश्वर्य और प्रभुत्व की आकांक्षा होती है। अत: इसी क्षेत्रें एक का स्वार्थ दूसरे के स्वार्थ का प्रतिद्वन्दी बनता है। इसलिए यह निर्विवाद है कि यदि बाद्य सुख-सुविधा तथा प्रभुत्व ही मानव-समाज में श्रेष्ठ पुरुषार्थ माने जायेंगे। तो इस जगत में व्यक्तिगत विरोध, आपसी संघर्ष और सामाजिक द्वन्द्वनिरंतर चलते रहेंगे। किसी प्रकार की भी राष्ट्रीय नीति अथवा समाज-नीति मानव-समाज की इस अशान्ति के दावानल से रक्षा करने में समर्थ नहीं होगी। आग बुझाने की प्रत्येक चेष्टा नयी-नयी आग सुलगाती रहेगी। आज यही हो रहा है। आज सकाज में जो भ्रष्टाचार, वितंदावाद, अत्याचार, उत्पीड़न आदि दिखाई पड़ रहे हैं; उका एक मात्र कारण यही है कि हम पाश्चात्य सभ्यता के वशीभूत आत्मकेन्द्रित हो गए हैं।

भारतीय संस्कृति-सभ्यता तथा आदर्श में स्वार्थ परना को कहीं कोई स्थान नहीं है। हमने बहुत विकास किया है। हमारा मस्तिष्क भौतिक सम्पदा की उपलब्धि में जितना विकसित है, उसका शतांश भी आन्तरिक, अर्थात् हृदय पक्ष की संवेदनशीलता को विकसित करने में तत्पर नहीं है। फलत: इसके ही दुष्परिणाम समाज में यत्र-तत्र-सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं।

आज की स्थिति परिस्थिति के अवलोकन पर यही निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जब तक व्यक्ति-व्यक्ति में आध्यात्मिक भावों का जागरण नहीं होगा तब तक मानवामत्र के जीवन में अशान्ति की आग बुझ नहीं सकती है। मनुष्य के व्यष्टि जीवन और समष्टि जीवन के सारे विभागों को धर्म के आदर्श द्वारा सुनियंत्रित करने की व्यवस्था करना और सभी श्रेणियों के मनुष्यों को उनके कार्यों द्वारा आध्यात्मिक कल्याणनिष्ठ बना डालने की प्रबल चेष्टा मरना यही आज का युग-धर्म है। धर्म कोई साम्प्रदायिक विशेष मतवाद नहीं है। धर्म मात्र पारलौकिक कर्मकाण्ड भी नहीं है। यह कोई विशेष प्रकार की उपासना-प्रणाली या आचार-विचार भी नहीं है अथवा वास्तविक जीवन को अस्वीकार करके, किसी अवास्तविक काल्पनिक पदार्थ या आदर्श की सेवा भी नहीं है। धर्म तो मनुष्य के अन्तजीर्वन, ब्रह्म जीवन व्यष्टि जीवन और जीवन के सभी क्षेत्रों में सामञ्जस्य स्थापित करता है। धर्म सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् को लक्ष्य में रखकर मानव जीवन का सुखमय, शान्मिय बनाता है; ताकि हमारा समाज और राष्ट्र शान्ति के साथ प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहे।

पितृपक्ष के अवसर पर देश-विदेश के लाखों तीर्थ-यात्री पितर पूजा, श्राद्ध-कर्म, पिण्डदान आदि के लिए, जो गया आते हैं- उसके अन्त:करण में यही भावना निहित है। अपने मृत पूर्वजों के प्रति हम जो श्रद्धा, आदर और आस्था व्यक्त करते हैं, उससे यह शिक्षा मिलती है कि केवल दिवंगत आत्माओं के प्रति ही नहीं वरन् अपने भाई-बन्धुओं, आस-पड़ोस, समाज-राष्ट्र तथा प्राणिमात्र के प्रति हम संवेदनशील रहें। सबके साथ हमारा अपनत्व प्रेम-भाव तथा भाई-चारा बना रहे। मनुष्य-मात्र की यही परम उपलब्धि है और आध्यात्म का सत्संग ही इस परम लक्ष्य की सिद्धि का एक मात्र साधन है।

उप-निदेशक, उद्योग विभाग
बिहार सरकार, पटना

गया माहात्म्य एवं पिंडदान का महत्त्व

डा० राम निहोर पाण्डेय

प्रत्येक वर्ष भाद्रपद पूर्णिमा से आश्विन अमावस्या तक गया में पितृपर्व का विशेष महत्व है। गया की यात्रा करने मात्र से मनुष्य पितृ;ण से मुक्त हो जाता है। गया यात्रा के लिए घर से निकलने वाला व्यक्ति अपने प्रति कदम से पितरों के स्वर्गारोहण के लिए एक-एक सीढ़ी बनाता हैं जो व्यक्ति कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों में गया में निवास करता है वह नि:संदेह अपने कुल के सात पीढ़ी को तार देता है। अपने पुत्र को गया आया हुआ देखकर पितरों में उत्साह होता है कि यहाँ आया हुआ यह मेरा पुत्र अपने पैरों से भी जल का स्पर्श कर हम सभी को कुछ-न-कुछ अवश्य ही प्रदान करेगा ।

भारतीय बाड्गमय में उल्लेखित है कि जो व्यक्ति एक बार भी गया जाकर पिंडदान करता है, उसके द्वारा तारे गए पितर परम गति प्राप्त करते हैं -

सकृद् गयामिगमंन् कृत्वा पिण्डं ददाति यः ।
तारिताः पितरस्तेन यास्यति परमां गतिम् ।।

मनुष्य को बहुत से शीलवान तथाा गुणवान पुत्र की कामना करनी चाहिए ताकि उनमें से कोई एक तो गया की यात्रा करे अर्थात् वहाँ पिण्डदानादि क्रिया सम्पन्न करें । पितर गण इस गाथा का गान करते हैं तथा महर्षि कीर्त्तन करते हैं कि जो कोई भी गया की यात्रा करेगा वही हमें तारेगा अर्थात् मुक्ति प्रदान करेगा । पितर यह सोचते हैं कि मेरे कुल में उत्पन्न पापकर्मी तथा स्वधर्मविरत व्यक्ति भी यदि गया की यात्रा करेगा तो वह हम लोगों को तार देगा। यथा-

यदि स्यात् पातकोपेत स्वधमरितिवर्जितः ।
गया यास्यति वंश्यो यः सोऽस्थान् संतारमिष्यति ।।

पृथ्वी पर गया तीर्थ पुण्यशाली है। गया में गयाशिर श्रेष्ठ है । उसमें फल्गुतीर्थ उसका मुख भाग है। गया में जहाँ अक्षयवट है, वहाँ महान ऋषिगणों द्वारा देवताओं की आराधना की गयी थी । कहा जाता है कि पाण्डवों ने चातुर्मास्य व्रत ग्रहण कर ऋषियज्ञ किया था । देवताओं की यह भूमि अक्षय है यहाँ किए गये प्रत्येक सत्कर्म का फल अक्षय होता है। गया में भवितात्मा महर्षि मतड्ग का आश्रम है। श्रम एवं शोक विनाशक इस सुन्दर आश्रम में जाने से मनुष्य गवायन यज्ञ का फल प्राप्त करता है। वहाँ धर्मराज के समीप जा कर उनके श्री विग्रह का दर्शन तथा स्पर्श करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। अपने पुत्र अथवा अन्य किसी के द्वारा, जो पिंडदान के अधिकारी हैं, जिसे भी नाम एवं गोत्र द्वारा अब कभी भी गया में स्थित गयाकूप नामक पावनस्थल में पिंडदान दिया जाता है, उसे शाश्वत ब्रह्मगति की प्राप्ति होती है। गया में तीनों लोकों में विख्यात वैतरणी है, उसका गयाक्षेत्र में पितरों को तारने के लिए ही भवतरण हुआ है। इनके साथ ही गया के कितने ही तीर्थ हैं जिनका वर्णन विवरण विभिन्न पुराणादि में द्रष्टव्य है।

ऐसे यह बात भी सत्य है कि गया में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर तीर्थ नहीं है। पंचकोशी गया क्षेत्र में कभी भी पिंडदान करने वाला अक्षयफल का पुण्य प्राप्त करता है तथा अपने पितरों को ब्रह्मलोक ले जाता है। गया में स्वयं पितर रूप में जनार्दन भगवान विराजमान है। वहाँ पुण्डरीकाक्ष भगवान के दर्शन मात्र से मनुष्य ऋणत्रय से मुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण गया क्षेत्र का विस्तार पांच कोश (एक कोस आधुनिक- लगभग 3 कि. मी. के बराबर) में है। इसमें 'गयाशिर' का विस्तार एक कोश है। इन दोनों के मध्य ही तीनों लोकों के समस्त तीर्थ निवास करते हैं अस्तु ! गया नामक तीर्थ पितरों को अतीव प्रिय है यहाँ पिंडदान करने से मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता। अतएव सभी प्रयत्न द्वारा विशेष रूप से ब्राह्मणों को गया आकर विधिवत् पिंडदान करना चाहिए, जहाँ समस्त हिन्दुओं द्वारा पिंडदान किया जाता है।

पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर
भारतीय संस्कृति, प्राचीन इतिहास विभाग,
इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश)

मगध का लोक-पर्व

डॉ० सच्चिदानन्द प्रेमी

सुना है, संजय को दिव्य-दृष्टि मिली हुई थी, जिसके सहारे वे किसी परोक्ष लोक की घटना पर दृष्टिपात करने में सक्षम थे। महाभारत काल में संजय की इस दिव्य-दृष्टि का लाभ या सहारा एक ऐसे महाराजा ने लिया था जिन्हें दृष्टि नहीं थी और उनकी पत्नी ने अपनी दृष्टि को काली पट्टी से ढँक रखा था । यानी सम्पूर्ण राज्य ही दृष्टिहीन हो गया-सा लगता था। जब ऐसी परिस्थिति आती है तभी दृष्टि के लिए हाहाकार मचता है और दृष्टि के मूल में वे देवता आते हैं - जिन्हें सूर्य कहते हैं । - दृष्टि सूर्यः।

सूर्य की वेदों में दृष्टि के अतिरिक्त जगत की आत्मा कहा गया है -

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च
विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः
- ऋग्वेद 1/164/21

पुनश्च,

सूर्यादभवन्ति भूतानि सूर्येणचालितानितु
सूर्येलयं प्राप्तुवन्ति, यः सूर्यः सोहहमेवया ।

और तव सृष्टि ने दृष्टि की आराधना की -

उद्यते नमः! उदायते नमः!! उदिताय नमः!!!

- अथर्ववेद- 17/1/

सूर्य की उपासना सम्पूर्ण जगत में हुआ करती थी। मिश्र, जापान, मुलतान (पाकिस्तान) ईरान आदि देशों में इसका प्रत्यक्ष सबूत वहाँ पाए जाने वाले सूर्य मन्दिर हैं। उस समय सूर्योपासना ही प्रमुख विद्या थी - उपासना की। क्योंकि सूर्य को प्रत्यक्ष देवता माना जाता था - आज भी हैं ।

भारत की सूर्योपासना आदिकाल में सिर्फ मंत्रों के द्वारा ही हुआ करती थी । क्योंकि सूर्य परमात्मा के प्रतिरूप माने गये हैं -

दिवोधर्ता भुवनस्य प्रजापति :

- ऋग्वेद - 4/53/2

सूर्य एकता के प्रतीक हैं। आज सनातन सम्प्रदाय वैष्णव, शैव एवं शाक्त के खेमे में बँट गए हैं, परन्तु सूर्य को जगत की आत्मा होने के साथ-साथ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का सम्मिलित रूप भी माना गया है -

नमस्येन्द्रो वरूणो न मित्रो ब्रत मर्यमः नमिन्ति रूद्रः।।

- ऋग्वेद 2/34/9

मगध का सुप्रसिद्ध सूर्य मन्दिर देव (औरंगाबाद) में स्थापित विग्रह इसके प्रमाण हैं ।

कोणार्क (उड़ीसा) में स्थापित सूर्य मन्दिर में भी सविता (सूयोदय के पूर्व का सूर्य) ब्रह्मा सम्पूर्ण मार्तण्ड (दोपहर का सूर्य) विष्णु रूप में तथा सायं का सूर्य रूद्र रूप में स्थापित थे।

उदयात् पूर्वभा की सविता, उदयास्त मयवर्ती सूर्य।
हालाकि ब्राह्मण द्धशतपतऋ इसमें भेद नहीं करते-
असौ वै सविता य एष सूर्यस्तपति ।

- श. ब्रा० 31/213/18

उत्तर वैदिक साहित्य में भी यानी रामायण–महाभारत काल में भी सूर्योपासना प्रमुख उपासना रही। सूर्य की उपासना का मुख्य लाभ शरीर की रूग्णता निवारण हेतु विशेष रूप से किया जाता था । महाभारत काल में ही योगिराज श्रीकृष्ण के पुत्र शाम्ब को अपने पिता के श्राप से कुष्ठ रोग हो गया था वैद्य की औषधियों का कोई असर रोग पर नहीं हो रहा था । अश्पृश्यता के कारण घर/समाज में हीनता फैल रही थी । महामुनि नारद की शंसा पर अपने पिता से आज्ञा लेकर शाम्ब सिन्धु के उत्तर भाग में चन्द्रभामा नदी के तट पर भित्रवन में तपस्या करने लगे। तपस्या से प्रसन्न हो सूर्य ने उन्हें निरोग तो कर दिया, परन्तु चन्द्रभामा नदी के तट पर सूर्य की प्रतिमा स्थापित करने का आदेश भी दे दिया तथा इसकी पूजा–अर्चना के लिए विशेष प्रकार के ब्राह्मण की व्यवस्था शाकद्वीप से की । यह परम्परा आज भी परिब्रजित हो रही है। जो सूर्य की आराधना करता है, उसे कुष्ठ रोग नहीं होता और जिसे हो गया है उसे इनकी आराधना से ठीक हो जाता है।

सूर्योपासक जो मग कहलाये उन्हें इसी मगध क्षेत्र में बसाया गया । मग को धारण करने के कारण ही जम्बूद्वीप का यह क्षेत्र मगध कहलाता है।

सूर्योपासना को घर–घर तक पहुँचाने के लिए तथा जन–जन में आस्था स्थापित करने के लिए इस पद्धति को सरलीकरण किया गया । यही पर्व अब छठ ब्रत के रूप में प्रसिद्ध हो गया । पद्धति तो सरल होकर भी थोड़ी दुसहता के साथ ही स्थापित हुई ।

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी या चैत्र मास शुक्ल पक्ष की षष्ठी को यह ब्रत लोक पर्व के रूप में मनाया जाता है। षष्ठी से दो दिन पूर्व चौथ को नहाय–खाय यानी स्नानादि से निवृत होकर इस लोक पर्व को मनाया जाता है–

हिरण्मयं रथं यस्य केतवोडमृत वाजिनः
वहन्ति भुवना लाकि यक्षुषं तं नमाम्यहम्।।

सम्पादक, आचार्य कुल
प्राचार्य, टिकारी राज इण्टर महाविद्यालय, गया
आनन्द विहार, माड़नपुर, गया, मो० 9430837615

एक प्राचीन उपन्यास जिसमें वर्णित है गया का गौरव

डॉ० रामनिरंजन परिमलेन्दु

एक प्राचीन उपन्यास जिसमें वर्णित है गया का गौरव – और वह उपन्यास है ' आश्चर्य वृत्तांत ' जिसकी रचना 1884–1888 ई० में हुई। इस उपन्यास की रचना पण्डित अम्बिकादत्त व्यास (चैत्र शुक्ल अष्टमी, विक्रम संवत् 1915, सन् 1858 ई० – मार्गशीर्ष बदी 13 सोमवार तीन बजे रात्रि, विक्रम संवत् 1958 तदनुसार 19 नवम्बर, 1900 ई०) ने की थी। कर्म क्षेत्र की दृष्टि से व्यास जी बिहार के थे। उन्होंने बिहार के विभिन्न नगरों, उपनगरों में अनेक धर्मसभाओं की स्थापना की थी। वे आधुनिक संस्कृत गध के प्रमुख स्तंभ थे। आधुनिक संस्कृत साहित्य में उनका शलाधनीय स्थान रहा है। संस्कृत में शिवराज विजय उनका प्रसिद्ध उपन्यास है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया । उत्तर बिहार में हिन्दी पत्रकारिता का श्रीगणेश व्यास जी ने ही किया । उनके सम्पादन में मधुबनी से ' पीयूष प्रवाह मासिक पत्र वैष्णवपत्रिका सम्मिलित का प्रकाशन हुआ था जिसका प्रथमांक 25 फरवरी, 1884 ई० को निकला था।

' आश्चर्य वृत्तान्त ' हिन्दी में व्यासजी का एकमात्र उल्लेखनीय उपन्यास है। यह मूलत: एक मन:कल्पनात्मक उपन्यास है। यह उपन्यास सर्वप्रथम मधुबनी से प्रकाशित ' पीयूषप्रवाह मासिक पत्र वैष्णव पत्रिका सम्मिलित ', 25 अप्रैल 1884 ई० (भाग 01 संख्या 3), 25 जून, 1884 ई० (यात्रा 01 संख्या 5) और 25 दिसम्बर 1884 ई० (यात्रा 01 संख्या 11) के तीन अंकों में ' आश्चर्य की कथा ' शीर्षक ने आंशिक रूप से प्रकाशित हुआ था। इसे लेखक ने "उद्योगादि और भिन्न–भिन्न स्वभावों का सूचक अद्‌भूत रस का गद्य काव्य" घोषित किया था। यह शब्दाबली उपन्यास के मूल शीर्षक के उपरांत कोष्ठक में दी गई थी। व्यासजी के अनुसार

उपन्यास का अर्थ गद्यकाव्य ही है। इस उपन्यास का मूल नाम 'आश्चर्य की कथा' ही है। किन्तु सम्पूर्ण उपन्यास 'आश्चर्य वृत्तांत' के नाम से ही प्रकाशित हुआ। इसका पुस्तकाकार प्रथम संस्करण 1893 ई० में व्यास यंत्रालय, भागलपुर से गणपति त्रिपाठी के प्रबंध से मुद्रित प्रकाशित हुआ। व्यास यंत्रालय के संस्थापक और स्वत्वाधिकारी अम्बिकादत्त व्यास ही थे।

1893 ई० में प्रकाशित इसके प्रथम संस्करण के मुख्य पृष्ठ की प्रतिलिपि अधोलिखित है–

"आश्चर्य वृत्तान्त, एक बड़े अचम्भे की बात जिसके आगे जादू इन्द्रजाल भूत विद्या आदि सब झख मारैं और चुहचुहाती हिन्दी में लहराती कविता और तिस पर भी उपदेश साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास विरचित, भागलपुर, व्यास यंत्रालय में गणपति त्रिपाठी के प्रबन्ध से छपा, सन् 1893, पहली बार 500 पृष्ठ–सं० 199."

इसके तृतीय और चतुर्थ संस्करण 1941 ई० और 1949 ई० में व्यास जी के पौत्र कृष्णकुमार व्यास द्वारा व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी से प्रकाशित हुए थे।

'आश्चर्य वृत्तान्त' के पूर्व ठाकुर जगमोहन सिंह द्वारा 1885 ई० में लिखित और 1888 ई० में प्रकाशित 'श्यामास्वप्न' उपन्यास का प्रकाशन हुआ थ। जो हिन्दी का सर्वप्रथम मन:कल्पनात्मक उपन्यास है। 'आश्चर्य वृत्तान्त' हिन्दी का दूसरा मन: कल्पनात्मक उपन्यास है।

'आश्चर्य वृत्तान्त' में प्राचीन भारत के गौरव की स्वर्णिम गाथा है। कथा का मन:कल्पनात्मक स्वरूप गठन कर उपन्यासकार ने प्राचीन भारत की गौरव–गाथा का वर्णन किया है। इस उपन्यास में भारत के प्राचीन सांस्तिक उत्कर्ष के प्रति आस्था का आलोक है, इसमें पुरातन भारत की चमत्कारपूर्ण शिल्प विद्या का वर्णन है। इसमें वर्णित विलक्षण दुर्ग की देव–दुर्लभ स्थापत्य–कला वर्णनातीत है।

हिन्दी कथा साहित्य में गया के आंचलिक तत्त्वों की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने ही की। गया के आंचलिक निरूपण में यथार्थ–वृत्ति की प्रचुरता है।

गया विश्व का एकमात्र पितृतीर्थ है। यह मोक्षभूमि है।, मुक्तिधाम है। गया संसार का एकमात्र नगर है जहाँ सम्पूर्ण विश्व के हिन्दू अपने पितरों का गयाश्राद्ध करते हैं। अपने पितरों की मोक्ष–प्राप्ति की सदिच्छा से पिंडदान मात्र गया में ही अनादि काल से होता रहा है। वायुपुराण वस्तुत: गया माहात्म्य ही है। गया में श्राद्ध की सनातन परम्परा, बोधगया, बोधगया के महन्त, गया स्थित ब्रह्मयोनि पर्वत, बराबर पहाड़, कौआडोल पहाड़, बराबर पहाड़ की कर्णचौपाड़ गुफा, बराबर पहाड़ की प्राचीन गरिमा, गयावाल पंडो के रहन–सहन आदि का वर्णन अत्यंत रोचक और प्रभावपूर्ण ढंग से आश्चर्य वृत्तान्त में किया गया है।

उक्त उपन्यास में गया के वर्णन का कुछ अंश द्रष्टव्य है –

"पहिले हमलोग बुद्ध गया गये । यह गया जी के दक्षिण लगभग तीन कोस की दूरी पर है। वहाँ एक बड़ा भरी बुद्ध का मन्दिर है, जिसे बहुत पुराना और टूटा–फूटा समझ कर पहले ब्रह्मा के बादशाह ने मरम्मत करवाई थी और अब सरकार अंगरेज बहादुर की ओर से भी बड़ी मरम्मत कराई जा चुकी है।

सचमुच ऐसा ऊँचा और विशाल मन्दिर मैंने आजतक कहीं कोई नहीं देखा था। वहाँ के स्थान में बुद्ध चिन्ह देखने से मुझे इस देश में किसी समय बौद्ध मत के पूरे फैल जाने का स्मरण होता था ।

वहाँ एक सम्पन्न महन्त की बड़ी गद्धी है। इनको वहाँ के छोटे राजा ही कहना चाहिये। इनके यहाँ साधुओं की जमात है और विदेशियों को नियम से सीधा मिलता है। ये लोग शंकरमतानुचार्या हैं। इनके देखने से मुझे साथ ही यह भी स्मरण हुआ कि स्वामी शंकराचार्य वैसे प्रतापी और बौद्ध मत के विरूद्ध थे कि जहाँ मन्दिर, वहाँ साथ ही उनकी गद्दी थी, जो अब तक जम रही है।

फिर हमलोग ब्रह्मयोनि के ऊँचे पहाड़ पर गये। यह गया के बहुत समीप है। इस पर से गया और साहबगंज के नगर की भी शोभा देख पड़ती थी। ऐसा जान पड़ता था कि किसी ने उस नगर का चित लिख, पैर के पास धर दिये हैं। .....

मैं उसे भली भांति देखभाल कर, फिर बस्ती में आया, वहाँ लोगों के मुँह से बराबर के पहाड़ की बड़ी प्रशंसा सुनी कि वह अभी तक सिद्धस्थान है और वहाँ बहुत तपस्वी मुनि लोग भी रहते हैं। तब मैं बड़ा उत्कंठित होकर चार पाँच इष्ट मित्र और नौकरों के साथ उस पहाड़ की ओर चला।

यह पहाड़ गया से कुछ दूर पड़ता है और मैं सैलानी आदमी, इसलिये दूसरे दिन पहुँचा। राह में कई एक गाँव पड़े। वहाँ की विचित्र भाषा और विचित्र पहनावा देख, मेरे चित्त में और ही भाव होता था। एक निरे गयानिवासी और दूसरे एक टटके मैथिल जी मेरे साथ पड़ गये थे। जब वे एक दूसरे से बातें करते थे तो विचित्र ही 'कहलथू सुनलथू' औ 'कहैछी सुनैछी' की झड़ी सुन पड़ी थी। और था ही, पर इनके बात-बात में 'थू' और उनकी बात में 'छी' था ।

बराबर पहाड़ दूर ही से देख पड़ने लगा। जान पड़ता था कि यह भी सिर उठा कर हम लोगों को देख रहा है। इसके सबसे ऊँचे शिखर पर एक पेड़ भी बड़ा भारी देख पड़ता था। जैसे सिर पर तुर्रा हो। इसी के पास एक पहाड़ था। इसका नाम लोगों ने कौआडोल बताया। यह बात भी लोगों से जानी गई कि इस पर एक बड़ी भारी शिला है, वह केवल कौए के बैठने से भी हिल जाती है। मैंने भी मान लिया कि क्या आश्चर्य है। कोई शिला ऐसी ही तराजू ऐसी होगी जो कौए का बोझा भी किसी ओर न सम्हाल सके।

यों सांझ होते-होते उस बराबर के पहाड़ की जड़ में पहुँचे। उस समय एक तो सांझ होने के कारण अंधकार होता ही आता था फिर उस पहाड़ के पेड़ों ने तो गझिन होने के कारण, एकाएकी नील ही स्वरूप धारण किया । यह आकाश चूमता हुआ ऊँचा पहाड़ - वह श्याम पेड़ों की छटा - वह ढंढ़ी हवा का सर्राटा - वह वनैले जन्तुओं का शब्द - वह बड़ी कन्दराओं का गूंजना - औ वह एक विलक्षण सन्नाटा, इस समय भी मुझको प्रत्यक्ष ही सा जान पड़ता है।" (आश्चर्य वृत्तान्त, पृष्ठ 5-7)

बराबर पहाड़ की प्राचीन गरिमा का वर्णन भी इस उपन्यास में किया गया है। बराबर पहाड़ में "सहस्त्रों बातें देखने योग्य हैं, क्या-क्या कहें ?यहाँ कितनी ही कोठरियाँ हैं जो पहाड़ के भारी-भारी चट्टानों को खोद-खोद करा बड़े-बड़े गुणियों की बनाई हैं, जिन्हें देखने से तुम्हें जान पड़ेगा कि सहस्त्रों वर्ष के पहले भी इस देश में कैसी, शिल्प विद्या थी। कहाँ ये लोहे ऐसे ठनठनाते पत्थर औ कहाँ उन कोठरियों की ऐसी चिकनी भीत जिनमें मुंह देख लो। जिन पत्थरों की छोटी-छोटी खल पाँच-पाँच सौ रूपयों में बिकती है औ वैधों के बरसों के रगड़े में भी मासे भर की इधर-उधर नहीं होती, उनको बराबर चौकोर चिकना बनाना क्या साधारण काम है ?यह साधरण भूमि नहीं है। जब मगध में जरासंध का राज्य था तब इसे पहाड़ी की शोभा ही निराली थी। जरासंध ने इस प्रान्त को एक उद्यान से बना रखा था। इसी पहाड़ की कन्दरा में जरासंध ने हजारों राजाओं को कैद किया था। इसी पहाड़ में जरासंध की बेटी अस्ति औ प्राप्ति, सखियों के संग विहार करती-फिरती थी। जब कंस जरासंध के यहाँ ससुराल आते थे तो इसी पहाड़ पर भारी-भारी पत्थरों के उठाने की कसरत करते थे। राजा नन्द इसी पहाड़ पर बरसात काटते थे। महाराज चन्द्रगुप्त इसी पहाड़ पर शिकार खेलते थे। चाणक्य जी ने इसी पहाड़ में बहुत सी सेना रखी थी औ राक्षस के भेलियों को कैद किया था । भास्कराचार्य और वाग्भट्ट ने इसकी चोटी पर से ग्रह साधे थे। मैं अधिक क्या कहूँ, अभी तक इस पहाड़ में असंख्य ऋषि मुनि औ महात्मा लोग तप करते हैं। तुम श्रम करके देखोगे तो आप ही बहुत चमत्कार दिख पड़ेगे।" (आश्चर्च वृत्तन्त, पृष्ठ 15-16)

बराबर अथवा वाणावर पहाड़ का कवित्वपूर्ण प्रकृति चित्रण यहाँ विशेष उल्लेख्य है-

"उस समय, आकाश के तोरे टिम टिम करते अस्त हो चले थे। श्याम आकाश पर प्रकाश का चन्दनचूर सा उड़ चला था। पहाड़ के भृगों ने अंधकार के कपड़े अलग उतारे थे। पेड़ों पर चिड़ियों की पाठशाला सी खुलने लगी थी। पूरब की ओर सिन्दूर की आंधी सी उड़ रही थी, जिसे देख चित्त में अनेक भवना होती थी कि वे लाखों लाल कमल खिले हैं, कि रजोगुण का ढेर लाल गुम्मज है, कि पूर्व दिशा के ललाट की रोटी है, कि सूर्य की स्तुति करते हुए करोड़ों सिद्धों के गुरूए कपड़ों की भड़क है कि मारे हुए अंधकार के रूधिर का कीच है, कि करोड़ों ब्रह्मचारियों की फेंकी हुई लाल फल और रक्त चन्दन से मिली अर्धजलि है, कि यूँ लोक को छोड़कर भागा, भारतवासी वीर क्षत्रियों का प्रताप है, कि ब्रह्मा से आती हुई जहाजों के बनाती पाल है, कि देवताओं की होली की, गुलाल है, इत्यादि।" (आश्चर्य वृत्तान्त, पृष्ठ 16-17)

महाभारत काल से ही बराबर पहाड़ का माहात्म्य रहा है। इस प्राचीन पर्वत की गुफाओं के संबंध में ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन काल में 1781 ई० में जौन हरबर्ट हेरिंगटन (John Herbert Harington) ने 'एशियाटिक रर्सचेज बाल्यूम एक' में पृष्ठ संख्या 276-278 पर एक लेख अंग्रेजी में बराबर पहाड़ पर लिखा था जिसका शीर्षक था - 'ए डिस्क्रिप्सन ऑफ ए केभ नियर गया' (A description of a cave near Gaya). यह उक्त पर्वत और उसकी गुफाओं पर प्रकाशित किसी भी भाषा में पहला लेख था। तत्पश्चात् पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपने उपन्यास 'आश्चर्य वृत्तांत' में इसका कवित्वपूर्ण वर्णन किया ।

'आश्चर्य वृतांन्त' की चित्रवत् वर्णन-शैली है। गया के गयावाल पंड़ों की संगीतप्रियता, उनमें हुक्का-चिलम, पान और अतर का उन्मुक्त व्यवहार औरउनके यहाँ नाना प्रकार के मनोहर पक्षियों के पालने की प्रथा का यथार्थ वर्णन लेखक ने अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। गया के गयावाल समाज की बैठक का चित्रण किसी भी उपन्यास अथवा सहित्य में सर्वप्रथम व्यासजी ने ही उपस्थापित किया उदाहरणार्थ,

" ..... क्षण भर के भीतर गया में करसिल्ली पर अपने पंडे मेहरवार की बैठक में पहुँच गया। ओ ...! अब क्या कहना है! वह इसराज धमधमा रही है, ईमन कल्याण छिड़ रही है, मियां बाकरल्ली तान भी छोड़ते जाते हैं, एक दूसरे गयावाल भी बैठे हैं, और तन्मय हो बांया धुटका रहे हैं, हुक्के भरे जाते हैं, नहचे फैलाये जाते हैं, फू फू धूआं उड़ रहा है, धीरे-धीरे गुड़ गुड़ शब्द हो रहा है, हाथाहाथी चिलमें चल रही हैं और पान अतर भी धुमाया जा रही है। चारों ओर बुलबुल बया, अगिन लवा के पिंजरे लटक रहे हैं और चुह चुह चुह चुह चुहचुहाना सुना जाता है।" (आश्चर्य वृत्तांत, पृष्ठ 79)

भारत के विष्णु रूप और शिव मूर्ति रूप का वर्णन इस उपन्यास में कर व्यास जी ने राष्ट्रीयता का शंख निनाद किया है।

"आश्चर्य वृत्तांत' की वर्णन-शैली में प्रचुर रोचकता है। यह यात्रा वृत्तांत शैली का उपन्यास है। काल्पनिक कथा में तत्कालीन सामाजिक दृश्यों और स्थितियों का मौलिक एवं रूचिकर निरूपण इसमें हुआ है। यह सांस्कृतिक जागरूकता, धर्मिक निष्ठा और भव्य हिन्दुत्व का रोचक उपन्यास है।

व्यासजी एक सफल औरर प्रखर वक्ता थे। अत: उनकी भाषा में वक्तृत्व कला का प्रभाव है। विवेच्च उपन्यास में उन्होंने तत्कालीन हिन्दी गद्य को एक नवीन उत्कर्ष प्रदान करने के प्रयास किए । गया ही नहीं, मगध के प्राचीन गौरव को व्यक्त करने वाला प्रथम उपन्यास नि:संदेह 'आश्चर्य वृत्तांत' ही है।

दक्षिण दरवाज़ा, गया
दूरभाष - 0631-2222347, 9470853118

सत्संग

श्री राम बचन सिंह

द्वापर युग यानी कृष्णकाल के अंत से ही कलि युग का प्रारंभ हो गया है। कृष्ण ने इस काल में मनुष्य ही नहीं बल्कि सभी प्राकृतिक वस्तुओं को भी सचेत किया है। अर्जुन जो कृष्ण के सबसे प्रिय पात्र थे, उनको ब्रह्म का साक्षात् कराने के बाद कहा था अर्जुन कर्म करो उचित या अनुचित जो समझो वो करो तभी अर्जुन ने बाण उठाया था । इसका मतलब साफ है कि कर्म ही मनुष्य की सफलता और असफलता का कारण बनता है। कर्म, उपकार, परोपकार पर आधारित स्वार्थ रहित हो तो वह ब्रह्म का स्वरूप का जानकार होता है। जैसे राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद आदि महापुरूष होगे, जो अपने कर्म और कार्य एवं ज्ञान के अच्छे मार्ग का रास्ता बताया उनलोगों ने कहा कि कर्म में एकाग्रता ही मनुष्य को आत्म विश्वासी बनाता है, साथ ही कहा असफलता ही सफलता की कुंजी है। सिर्फ असफलता के कारणों को जानो सफलता स्वयं मिल जाएगी । उदाहरण स्वरूप - दो व्यक्ति हिमालय की चोटी पर चढ़ रहे थे उसमें से एक शिखर पर पहुँच गया, दूसरा नहीं पहुँचा, नहीं पहुँचने वाला व्यक्ति, पहुँचने वाले व्यक्ति से कारणों को जाना कि बर्फीली चट्टानों पर चढ़ने का जूता और बर्फीली पहाड़ियों के रास्ते का अध्ययन एवं मुश्किल में आने वाली सभी बातों को रखकर चला । अत: सफल हो गया । तब असफल व्यक्ति ने भी वही रास्ता अपनाया और वह भी सफल हो गया, इसलिए धर्म की किताबों में, ऋषि के उपदेशों में, सत्संग एवं प्रवचनकर्त्ताओं की वाणी में आज कलियुग में भी कर्म पर जीने की कला की ज्ञान प्राप्त होता है। ईश्वर स्वरूप कर्म की बात करते हैं । और कर्म की व्याख्या भी कर देते हैं। लेकिन, कर्म करने के प्रवृत्ति को उसके ऊपर ही छोड़ देते हैं क्योंकि कर्म के अनुसार उनको फल देता है। कर्म के फल का निर्णय सिर्फ ईश्वर ही करता है। ऐसा शास्त्रों में वर्णित है। अत: उचित और अनुचित का ज्ञान सत्संग एवं ज्ञानी पुरूषों के प्रवचनों से ही मिलता है। कलियुग के भवसागर को पार करने का रास्ता सत्संग एवं ज्ञानी के बताये हुए मार्ग में उपकार और परोपकार पर आधारित कर्म करने की कोशिश करें तो इस कलियुग में भी ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं।

जैसे रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद को मिला। आप में भी वही आत्मा है। कोशिश करके देखें ईश्वर के स्वरूप को, वह जरूर मिलेंगे । यहाँ कर्म ही उद्देश्य है। और कर्म का फल भी, कर्म के अनुसार फल मिलना निश्चित है। उदाहरण स्वरूप रामावातार

में राम ने बालि को छुप के मारा था तब बालि ने पूछा था कि छुप कर मुझे क्यों मारा उसी समय राम ने कहा था कि बालि तुम्हें भी मुझे मारने का इसी तरह अवसर मिलेगा राम और कृष्ण दोनों विष्णु के अवतार माने जाते हैं। कृष्णावतार में कृष्ण की मृत्यु एक व्याधा के बाण से हुई। व्याधा कृष्ण को लक्ष्य करके बाण नहीं चलाया था लेकिन रामावतार में राम के कर्म के अनुसार उसका फल कृष्णवातार में कृष्ण को कर्म का फल मिला इसलिए कर्म को परोपकार एवं उपकार जो स्वार्थ रहित हो वैसा ही कर्म करना चाहिए। आत्मा हमेशा इसी तरह के कार्य करने के लिए छटपटाती रहती है, क्योंकि वह परमात्मा का ही अंश है आत्मा का शरीर जो स्थूल एवं नश्वर है उसको अच्छे मार्ग की ओर ले जाना चाहती है लेकिन मन उनको फल के अनुसार निर्णय लेने को बाध्य कर देती है। इसलिए श्री ष्ण ने कहा मन को अगर साध्य लोगे तो मेरे सान्निध्य में आ जाओगे। कर्म में उपकार और परोपकार स्वार्थ रहित हो उसको करने के लिए मन की शान्ति आवश्यक है। और यह सत्संग एवं ज्ञानी के प्रवचनों से ही मिलती है।

कलियुग में एक कहावत चरितार्थ है कि छल, बल कल, तब कलियुग में चल । इस यथार्थ को समझने के लिए सत्संग एवं ज्ञानी पुरूषों का सानिध्य आवश्यक है। महाभारत में श्री कृष्ण ने उपरोक्त बातों का अलग-अलग रूप में प्रयोग किया। लेकिन, उसमें परोपकार, उपकार के साथ अधर्म और अन्यास को पूर्णत: समाप्त करने का उद्देश्य था ।

आज भी श्रीकृष्ण के बताये या किये हुए कार्यो का अवलोकन करते हुए कर्म करें तो हमारा समाज देश परिवार में शांति सुख की वृद्धि निरन्तर होती ही जाएगी ।

खरहरी कोठी, बुनियादगंज, गया

श्राद्ध-पिण्डदान का पौराणिक स्थल कर्दमेश्वर वाराहेश्वर मनोकामना मंदिर

प्रो० कृष्णकांत पाण्डेय

बाबा कर्दमेश्वर और वाराहेश्वर मनोकामना मंदिर एक स्वर्गीय पितृतीर्थ है जो समस्त पापों को दूर करने का एक अद्‌भूत केन्द्र है। समस्त सौभाग्य एवं ऐश्वर्य प्रदायक बाबा कर्दमेश्वर वाराहेश्वर मनोकामना मंदिर मात्र गया नगर एवं बिहार सहित भारत का एक प्राचीनतम् मंदिर है, जहाँ भक्तगण अपने इष्टदेव का दर्शनमात्र से ही समस्त अभिष्ट मनोकामनाओं को सहज ही प्राप्त कर लेता है। "वैकुण्ठ घाट" साक्षात् मोक्षदायिनी एवं पितृवरदायिनी घाट के रूप में विख्यात है। इसे स्थानीय भाषा में "वेकुआ घाट" भी कहते हैं। यह मंदिर उपरडीह स्थल पर अवस्थित अत्यन्त मनोरम, प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण श्रद्धालु भक्तों के साथ प्रकृति प्रेमी पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र रहा है। मंदिर के प्रांगण में बाबा कर्दमेश्वर भगवान शिव का कामनालिंग विभिन्न आकृतियों में सुशोभित देवगण की प्रस्तर प्रतिमाएँ पाषाणकालीन कला का जीवन्त रूप है।

मनोकामना मंदिर वस्तुत: एक गोपुर मंदिर है। वास्तु विज्ञान पर आधारित इस मंदिर की विशेषता यह है कि मंदिर प्रवेश द्वार इन्द्र द्वार के रूप में पूर्वाभिमुख दिशा में स्थित राजसुख, वैभव, ऐश्वर्य तथा मान-सम्मान प्रदायक है तथा निष्क्रमण मार्ग उत्तराभिमुख है जिसे कुबेर द्वार कहा जाता है इस द्वार से निकलने वाले भक्तगण ऐश्वर्यपति कुबेर का प्रसाद स्परूप अपने साथ असीम धन-सम्पदा की गठरी साथ ले जाता है।

गया कुल दर्पण के अनुसार इस मंदिर को "कर्दमालय" भी कहा गया है जिसे गया स्थित श्राद्ध वेदियों में चौवनवाँ स्थान प्राप्त है।

इस मंदिर का प्राचीन इतिहास भी अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। विवरणानुसार महाराजा राजेश्वर प्रताप इस मंदिर में प्रत्येक कृष्णत्रयोदश को रूद्राभिषेक किया करते थे एवं चतुर्दशी के दिन पाँच सौ ब्राह्मणों को ब्रह्मभोज एवं वस्त्र दान किया करते थे। रूद्राभिषेक एवं भव्य आयोजन समारोह के रूप में गाजे-बाजे झाल, मृदंग, तुरही आदि बाद्ययंत्रों की प्रथम् स्वर्ण-किरणें स्पर्श का परम सौभाग्य भी इस मंदिर को प्राप्त है।

यहाँ के देवस्थलों में कर्दमेश्वर शिव, वाराहेश्वर मनोकामना देवी, कात्यायनी देवी, सरस्वती, लक्ष्मी, काली गणपति, हनुमान, सूर्य व कुबेर का विशेष महत्व है। गया श्राद्ध पिण्डदान करने वाले यहाँ आकर अपने अनुष्ठान से पितरों (पितरण) को संतुष्ट करते हैं। कुल मिलाकर श्राद्ध-पिण्डदान का यह प्राचीन तीर्थ है जहाँ पितृपक्ष के अलावा सालों भर भक्त आते रहते हैं।

भास्कर ज्योतिष अनुसंधान केन्द्र, चाँदचौरा, गया

मैं हूँ मधुश्रवा

आचार्य नवीन चद्र मिश्र वैदिक

फल्गु किनारे बसने वाले गया वासी ही नहीं आने वाले तीर्थ यात्री के भी मन में प्रश्न उठता होगा कि फल्गु का महत्त्व कहाँ से कहाँ तक है और क्यों ?

झारखण्ड प्रदेश से आगे बढ़ते हुए निरंजना के तट पर विष्णु के नवें अवतार बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। पुराणों में चर्चित "महानदी" मिलती है जिसे अपभ्रंश में "मुहाने नदी" कहते हैं। बीच में "मतङ्गवापी" एवं "धर्मारण्य" तीर्थ है पुनः उत्तर की बढ़ने पर सरस्वती विलुप्त धारा मिलती है जहाँ तर्पण एवं पंचरत्न दान का विद्यान है। अब आगे है मेरी राम कहानी ।

ब्रह्मयोनि मेरी उद्गम–स्थल मधु की धारा बहाने के कारण मेरा नामकरण "मधुश्रवा" पड़ा। पहले गयाश्राद्ध के अंतर्गत मुझ में तर्पण करने का बड़ा महत्त्व था परन्तु आज मुझे "मनसरवा" कह कर दायित्वपूर्ण कर लेते हैं। मैं ही गुजरती हूँ गया के तीन प्राचीन विष्णु में एक श्री मधुसूदन भगवान के सामने से। कुछ कदम पूरब दो तीन सीढ़ियों का घाट भी है, प्राचीनता अपने आप में वरवान कर रहा है और बस गया मधुसूदन कॉलोनी आगे (उत्तर तरफ) है अशोक बिहार कॉलोनी इस कॉलोनी के निवासी रामचन्द्र सिंह बनमाली कन्या विद्यालय की पूर्व प्राचार्य डा० विजया बताती हैं जब जमीन खरीदा तो नक्शे में "मनसुखा नदी" की चर्चा है। मेरे ही उपर से माड़नपुर नैली के मध्य एवं गया–बुद्धगया बाइपास मार्ग गुजरती है। पुनः दो जगहों पर। पुनः मार्कण्डेश्वर से दक्षिण एवं कोटिश्वर से इशान कोने से मेरे ही उपर गया–बुद्धगया मार्ग गुजरती है आगे पूरब नारायणी पुल पार करके अपने गोद में बसाया विष्णुपुरी कॉलोनी और आगे मेरे उपर है लखनपुरा पुल फिर क्या गया श्मसान से थोड़ा दक्षिण पितरों को मोक्ष दिलाने के लिए एक नदी में मिल जाती हूँ और उसका फल्गु नाम पड़ा। यहाँ से लेकर (मानसरोवर) उत्तर मानस वेदी तक श्राद्धीय कर्मकाण्ड के लिए महत्त्व रखता है – पुराणों में भी चर्चा है –

शिलाया सङ्गये यत्र तीर्थ यत्र मधुश्रवः ।
अचुतं च अश्वमेधानां स्नानं ल्लभते नरः।।

मुझ में स्नान कर के तर्पण करने से दस हजार अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है परन्तु मुझे लोग मधुश्रवा नदी न कहकर गणमान्य लोग भी मनसरवा नाला कहकर दायित्व पूर्ण कर लेते हैं।

मुझ में नाला गिराने, जलकुम्भी संबारे तरह–तरह से अपमानित होते हुए फिर भी फल्गु के मान बढ़ाने में गौरव महसूस कर संतोष कर लेने के अलावा और कोई रास्ता नहीं, मधु या मधु के समान मीठा जल बहाने वाली मैं मधुश्रवा हूँ पर मुझे लोग मनसरवा नाला कह कर अपने दायित्व को पूर्ण करेगा या कौन बेटा मेरी बात सुनेगा। मेरा सच्चा बेटा कौन साबित होगा – शासन, प्रशासन या कोई पितृःभक्त

पुराने अस्तित्व को पुनः जागृत करने के लिए सच्चे बेटे की बाट जोहने के अलावा मेरे पास कोई चारा भी नहीं –

।। शुभम्।।

पीताम्बरा साधक
मैखलौटगंज, के०पी०लेन, गया
मो०- 9430071590

प्राणियों की मुक्ति का पर्व पितृपक्ष

डॉ० शत्रुघ्न दांगी

प्राणियों को आवागमन से मुक्ति दिलाने का प्रसिद्ध पर्व पितृपक्ष मेला इस वर्ष 18 सितम्बर, 2013 से प्रारंभ होकर एक पखवारा 4 अक्टूबर, 2013 तक चलेगा। इस बीच देश-विदेश से लाखों हिन्दु तीर्थयात्री अपने पितरों की आत्मा की शांति एवं मोक्ष दिलाने की कामना से गया जिले के पवित्र विष्णुधाम गया में पधारेंगे और पिण्डदान तथा श्राद्ध कार्य संपन्न करेंगे। श्रद्धालुओं में विश्वास है कि पवित्र फल्गु तट पर बसे विष्णु धाम गया में पिंडदान व श्राद्ध क्रिया करने से प्राणी को सीघे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, अन्यथा, प्राणी की आत्मा चौरासी लाख योनी में भटकती रहती है। वायुपुराण एवं अन्य ग्रंथों में वर्णन है कि मृत प्राणियों के राजा यम हैं, जो स्वर्ग के एक दयालु शासक हैं। वहाँ मोक्ष प्राप्त प्राणियों की आत्माएँ आनन्दलाभ करती हैं। विष्णुधाम भारत के समस्त वैष्णव तीर्थो एक विष्णुपद मन्दिर समस्त वैष्णव मन्दिरों में अति पवित्र, पूजित तथा श्रेष्ठ है।

गयायां धर्मपृष्ठे व सरसि व्रक्षवस्तथा ।
गयाशीर्षदक्ष्यवटे पितृजां दत्ता मक्षयम् ।।

गयाधाम का विष्णुपद मन्दिर भव्य, आकर्षक एवं विशाल है। इसे इन्दौर की महारानी धर्मपरायघ अहिल्याबाई होल्कर ने पवित्र फल्गु नदी के तट पर जयपुर से कुशल कारीगरों को लाकर बनवायी थी। प्रस्तर की अष्टकोणीय सूचीस्तंभीय आकर्षक आ ति में बनवायी थी, जिसका राज मण्डप 58 फुट चौड़ा एवं मन्दिर की ऊचाई 100 फुट ऊँची है।

काल परिवर्तन की प्रक्रिया में गयाधाम में कई उतार चढ़ाव आये। एक समय आया जब गया के सारे धार्मिक कन्द्रों का लोप हो गया जो अतीत में तीर्थयात्रियों को आकर्षित करता था। पुराविद् बुकानन ने ऐसे 45 तीर्थस्थलों की सूची दी है, जहाँ पहले मराठे तथा धनिक वर्ग बलि चढ़ाने आया करते थ। श्राद्धबलि के इन प्रसिद्ध धार्मिक केन्द्रों में से 11 का तो अब पता ही नहीं चलता, जबकि उनके प्राचीन अवशेष आज भी विद्यमान है। आठ के पूजारी भी नहीं जानते जो मंगलागौरी, अक्षयवट खण्ड के अन्तर्गत आते हैं।

वर्त्तमान विष्णुपद एवं फल्गु सूर्यखण्ड क्षेत्र के बीच स्थापित धार्मिक केन्द्रों की ही वृद्धि हुई है। इसका एक कारण 18वीं सदी (1767 ई०) में अहिल्याबाई होल्कर द्वारा बनवाया गया प्रसिद्ध विष्णुपद मन्दिर है। प्राचीन जमाने के प्रसिद्ध गदाधर, नरसिंह, ष्ण-द्वारिका एवं सूर्य मन्दिर इसके बनने से श्रीहीन हो गये। जबकि इन्हीं मन्दिरों ने प्राचीन जमाने में दूर-दूर के तीर्थ यात्रियों को आकर्षित किये थे। 15वीं शताब्दी तक गया की प्रसिद्धि चरम पर थी। किन्तु मुगलकाल में हिन्दुतीर्थ स्थलों को विध्वंस करने, मूर्त्तियों को भंजन करने तथा देवालयों को विनष्ट करने के कारण लगभग 250 वर्षो तक गया की प्रसिद्धि अंधकार में रही। तीर्थयात्रियों का आना भी लगभग बंद हो गया। क्योंकि मुस्लिम शासकों द्वारा यात्री कर की शुरूआत कर दी गई थी ।

फिर जब मराठा शक्ति का उदय 18वीं सदी में हुआ तब गया की प्रसिद्धि पुन: स्थापित हुई। इसी काल के उतरा) में यहाँ अहिल्याबाई ने विष्णुपद मन्दिर का निर्माण करवाया जो लगभव 12 वर्षो तक चला।

गयाधाम के श्रीहीन और जनशून्य होने और पुन: श्रेष्ठ गौरव को प्राप्त करने का इतिहास विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृतांत एवं पुराविदों के अन्वेषण तथा उत्खनन के रिपोर्टो के आधार पर भी प्राप्त होता है। 4थी-5वीं (399-413 ई०) में आये चीनी यात्री ह्वेनसांग (युआज-च्वांग) ने गया को एक प्रसिद्ध हिन्दु शहर के रूप में वर्णन किया है। उसने लिखा है कि यहाँ एक छोटी सी जनसंख्या थी तथा ब्राह्मणों के 1000 परिवार थे जो ऋषि संतान थे । इन्हें राजा ने मृत्युकर से छूट दे रखी थी। आर्किलॉजिकल सर्वे ग्राफ इंडिया के रिपोर्ट के अनुसार अक्षयवट के पास 10वीं सदी के प्राप्त शिलालेखों में अक्षयवट की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। उसमें यह वर्णित है कि "यह स्थल यात्रियों के लिए अति पवित्र वेदी थी।" यही कारण है कि आज भी गयावाल पंडे यात्रियों को पिंडदान के बाद अंतिम सुफल अक्षयवट वेदी पर श्राद्ध कार्य संपन्न के बाद ही देते हैं। एक दूसरे शिलालेख में तो नयापत्त के शासक वज्रपाणी ने इसे अमरावती (इन्द्र की राजधानी) बनने की बात कही है। 11वीं सदी के अंतिम दशक तक 'गया-श्राद्ध' को काफी लोकप्रियता मिल चुकी थी। किन्तु दुर्भाग्य से 12वीं सदी के प्रारंभ में ही मुहम्मद बख्तियार खिलजी (1113 ई०) के आक्रमण से गया वीरान हो गया । गयावाल पंडे गया शहर छोड़ गाँवों में शरण ले लिये। यात्रियों का आना भी लगभग बंद हो गया । कुछ धर्माध

प्रवृति के हिन्दू यात्री यहाँ आते तो उन्हें मुस्लिम अधिकारी एवं लूटेरे तंग करते व लूट लेते। यह स्थिति गया की लगभग दो-तीन सौ वर्षों तक बनी रही। औरंगजेब (1660 ई०) का जमाना जब आया तब गयावालों के जीवन में एक नया मोड़ आया। गयावाल पंडों के बीच के ही शहरचंद चौधरी जो एक अच्छे कलाकार, गायक एवं तांत्रिक थे, ने औरंगजेब के दरबार में अपनी प्रतिभा के बल पर औरंगजेब की मल्लिका को प्रभावित कर उनके आग्रह पर बादशाह ने इन्हें 400 बीघे जमीन भेंट में दी। किन्तु इसके लिए चौधरी शहरचंद को एक बहुत बड़ी कुर्बानी देनी पड़ी। वह यह कि उन्हें मुस्लिम धर्म स्वीकार करना पड़ा। गया लौटकर उन्होंने गाँवों में दिन काट रहे गयावाल वासियों को अपनी जमीन में वसा कर आक्रमणों से भुक्तभोगी गयावाल वासियों के पूरे क्षेत्र की घेराबंदी करायी तथा चारो दिशाओं में चार विशाल सुरक्षा के फाटक (दरवाजे) लगवाये। गलियाँ भी संकीर्ण बनवायी। आज भी ये दर्शनीय है।

उल्लेखनीय है कि विष्णुधाम गया में गयावाल पंडों को यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि गयातीर्थ में आने वाले सभी श्रद्धालुओं के धार्मिक अनुष्ठानों के पुरोहित वे ही होंगे । यहाँ एक पथ धमी गयापालों का भी है जो अपने को गयासुर की आहुति के समय स्वयं विष्णु से अपनी उत्पत्ति मानते हैं। इस कारण इनका विशेष प्रभाव रामशिला तथा प्रेतशिला पहाड़ियों की वेदियों पर है। प्राचीन जमाने में यह क्षेत्र ब्रात्य और कीकट प्रदेश के नामों से भी जाना गया है जो अपवित्र थे। किन्तु वराहपुराण में गया को अति पवित्र तथा पद्म और वायुपुराणों में गया, राजगृह तथा पुनपुन को पवित्र माना गया है। आज के वैज्ञानिक युग में पितरों को दिया गया उनके वंशजों द्वारा पिंडदान व तर्पण उन्हें मिल पाता है या नहीं यह तो कहना कठिन है। किन्तु प्रेतात्माओं को स्वर्ग जाने के लिए पितृपक्ष मेले के विशेष अवसर पर "स्वर्ग की सीढ़ी" यहाँ तो लग ही जाती है।

सांस्कृतिक अनुसंधान केन्द्र
दाँगीनगर-लाव, टिकारी (गया) मो. 09430607530
Email: gbesdangi@rediffmail.com

मोक्षदायिनी फल्गु की व्यथा-कथा

श्री राम नरेश सिंह 'पयोद'

फल्गु का संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार है - फल -अर्थात्-जल। गु-अर्थात्-गुप्त, शून्य इस प्रकार फल्गु अपने अन्दर गुप्त जल रख लोगों को गुप्त फल प्रदान करती है। नामालिंगानुज्ञान कोष में फल्गु की महिमा बताते हुए कहा गया है -

अपार संसार समुद्रमध्ये स्वल्पश्च आयु वहवश्च विघ्नाः।
आपास्य फल्गुः, हंसो यक्षाक्षीर मीमायु मध्यात् ।।

(अर्थात्- इस विशल काय अपरम्पार रूपी समुद्र में अल्पायु जीवन में अनेक समस्यायें हैं। इस लिए बुद्धिमानों को सिर्फ सार तत्त्व ही ग्रहण करने को कहा गया है। जैसे हंस जल मिश्रित दूध से दूध ग्रहण कर जल को छोड़ देता है।)

फल्गु नदी मोहाना और निरंजना दो नदियों के संगम से बनी है। ये दोनों नदियों गया शहर से नौ कि.मी. दक्षिण वर्त्तमान बोधगया रोड से पूरब-दक्षिण में प्रवाहमान हैं, तथा दोनों की धारायें जिसे जगह पर मिलती हैं अर्थात् संगम करती हैं वहीं से इसका नामकरण फल्गु हो गया है। बहुत पहले विष्णुपद क्षेत्र के कुछ पहले फल्गु तट की चौड़ाई सताईस सौ फीट तक थी, जो वर्त्तमान में अतिक्रमण के कारण कम हो गई है। यह अतिक्रमण गया शहर के इसके दोनों किनारों पर आज भी जारी है (पूरबी और पश्चिमी किनारे) जिसके लिए स्थानीय नेता अधिक दोषी हैं। अब प्रशासन द्वारा इसे अतिक्रमण मुक्त कराने का अभियान चलया जा रहा है। इसके पश्चिमी तट पर पवित्र शहर गया बसा है जो बनारस, प्रयाग, दिल्ली, मद्रास और पाटलिपुत्र से भी प्राचीन माना गया है। जबकि इसके समकालीन नगर गिरिब्रज, वैशाली, प्रतिष्ठानपुर, कौशम्बी, हस्तिनापुर, कुशावती आदि समय के प्रवाह में न जाने कहाँ विलीन हो अपना वर्त्तमान अस्तित्व खौ चुके हैं जो एक खोजी विषय है। परन्तु गया का अस्तित्व आज भी कायम है। फल्गु और गया दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती, जैसे परमात्मा के बिना आत्मा की। इसका भौगोलिक इतिहास करोड़ों वर्ष पुराना है । इसकी उत्पति करोड़ों वर्ष पूर्व छोटानागपुर की बर्फाच्छादित पहाड़ियों के

रूप परिवर्त्तन से हुई है। जिसके चिन्ह स्वरूप फल्गु के पूरब, पश्चिम दक्षिण एवं उत्तर-पश्चिम की वर्तमान पहाड़ियों गवाह स्वरूप खड़ी हैं। हमारे भारतीय बाड्मय में फल्गु को महानदी एवं सुमागधा कहकर भी पुकारा गया है। तथा इसकी प्राचीनता काा अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि त्रेता में मर्यादा पुरूषोत्तम राम एवं द्वापर में पांडव पुत्रों ने भी सपरिवार अपने पितरों को मोक्ष प्रदान करने हेतु फल्गु में स्नान कर सर्वप्रथम बालू पिण्ड प्रदान कर तर्पण किया था। सीता माता ने जिस स्थान पर दशरथ जी को पिण्डदान कर तर्पण अर्पित किया था, वह स्थान आज भी सीता कुण्ड के नाम से विष्णु पद 'मन्दिर के पूरब, फल्गु के पूर्वी तट पर स्थित है' जहाँ लोग श्रद्धापूर्वक आज भी पितरों को पिण्डदान कर तर्पण करते हैं। यहीं पर झूठी गवाही देने की वजह से सीता जी ने फल्गु को अन्त:सलिला होने का शाप दिया था, जिसके कारण फल्गु अन्त:सलिला बनकर अपने अन्दर शीतल जल की धार लिए आज भी प्यासों को गरमी के दिनों में तृप्त करती रहती है। वायुपुराण के अनुसार - "फल्गु गंगा नदी से भी उत्तम है, क्योंकि गंगा केवल विष्णुपद नख से ही निकली है, परन्तु फल्गु स्वयं आदिगदाधर स्वरूप है। फल्गु दूध देने वाली नदी है, जिसके जल में शहद थी का अंश मौजूद है। घृतकुला, मधुकुला, कपिलाधारा, अग्निधारा, वैतरणी तथा आकाशगंगा इसकी सहायक धारायें हैं। पुलस्त्य ऋषि के अनुसार - "पुष्करेतु कुरूक्षेत्र गंगयां मगधेषु य, स्नात्वा तारयते जन्तु सप्तावंशं स्तवा" *(अर्थात्-पुष्कर कुरूक्षेत्र गंगा और मगध प्रदेश के तीर्थ फल्गु नदी आदि में स्नान करने वाला अपनी सात पीछे और सात आगे की पीढ़ियों का उद्धार करता है।)* महाभारत के श्लोक सं० 42 में फल्गु की महिमा का बखान करते हुए कहा गया है "तत: फल्गु ब्रजेद राजस्यतीर्थ सेवी नराधिष अववमेघम पापनोति सिद्धि च महती ब्रजते।" *(अर्थात्- फल्गु तीर्थ की यात्रा करने वाले को अश्वमेघ यज्ञ के फल की प्रप्ति होती ही है, क्योंकि यह पतित पावन पुण्यात्मा नदी है।)* गया के ब्रह्म सरोवर से उत्तरमानस तक फल्गु के करीब एक किलोमीटर की धार में पिण्डदान और तर्पण करना श्रेष्ठ माना जाता है। परन्तु आज पितृपक्ष में भीड़ के कारण इसमें कुछ अधिक क्षेत्र में भी पिण्डदान करना लोग शास्त्र के अनुसार सही मानते हैं।

गया शहर की सीमा को पारकर फल्गु उत्तर की ओर तीस कि. मी. पर स्थित खिजरसराय प्रखण्ड स्तरीय बाजार से पश्चिम श्रीपुर और सुल्तानपुर गाँवों के सटे पूरब से बहती हुई आगे जारू-बनवरिया-सलेमपुर के गाँवों को अपने पूर्वी तट पर छोड़ आगे बढ़ती है, जहाँ उदेरा स्थान पर आज बिहार सरकार द्वारा एक वृहद् डैम का निर्माण कराया जा रहा है, जिससे गया, जहानाबाद, और नालन्दा जिलों में नहरों द्वारा हजारों एकड़ जमीन की सिंचाई कर सूखे से किसानों की फसलों को बचाकर हरित-बिहार का नारा सार्थक किया जा सकेगा। इसमें स्थानीय जहानाबाद के वर्तमान सांसद श्री जगदीश शर्मा का विशेष योगदान है। यहाँ से फल्गु फिर पूरब उत्तर दिशा में प्रवाहमान होते हुए जहानाबाद जिला में प्रवेश करती है। जहाँ हुलासगंज से पश्चिम बरसाती नहरा का निर्माण कर बरसात के दिनों में आस-पास के कुछ गाँवों में धान की सिंचाई की जाती है। परन्तु जिस साल पूरी बरसात नहीं होती, उसे साल फसलें मारी जाती है। काश! पूर्वप्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी बाजपेयी की नदी जोड़ों योजना सफल हो जाय और अन्त:सलिला फल्गु का शाप मिट यह सदाबहार नदी बन सब जगह खुशियाली फैला सके।

नालन्दा जिले के पश्चिमी तट कोण में फल्गु से भुतही नाम की एक छोटी नदी निकलती है, जो पटना जिले की सीमा को पार करती हुई, हिलसा से उत्तर (नालन्दा जिला) की ओर बहती है। फिर बाँकीपुर छरियावाँ के बड़े टाल क्षेत्र में बहती हुई महतमेन नदी की शाखाओं के रूप में अपना नाम बदल प्रवाहित होती है। इसी महतमेन नदी की एक धारा कठौतिया नदी के नाम से जानी जाती है, जो आगे चल धोबानदी के रूप में जानी जाती है। इसकी बायीं ओर की धारा महतमेन के नाम से ही फतुहा से छ: कि. मी. पूरब-दक्षिण कोण में धोबा नदी में ही प्रवेश करती है। इसके साथ उसकी अन्य छोटी-बड़ी उपधारा में धोबा नदी में ही मिलती हैं। धोबा नदी पटना जिले की उत्तरी भूमि में फतुहा से मोकामा तक बहती है। और अनेक छोटी नदियों का जल लेकर मोकामा के टाल में प्रवेश करती है। इस तरह फल्गु मोकामा बड़हिया के टाल क्षेत्र में महतमेन, कठौतिचया, नोनई, चिरैचाँ, नरहैना, पंचाने, मोहिनी आदि उपनामों से प्रवाहित हो, सीता जी के शाप के कारण गंगा में न मिल टाल क्षेत्र में ही अपना अस्तित्व विलीन कर इन क्षेत्रों में अन्त:सलिला का गुण खो गया। जहानाबाद, पटना एवं नालन्दा जिलों की घरती को उर्वरा बनाती हुई अपनी व्यथा कथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इन मार्मिक पंक्तियों को सार्थक करती है - "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, ऑचल में है दूध, और आँखों में पानी"

'पयोद निकेतन' डालमिया कम्पाउण्ड
लखीबाग, पो० - बुनियादगंज, गया - 823003
मो० - 8084286426, 9234872810

शून्य से ब्रह्म तक

श्री राकेश कुमार 'मिन्टू'

साधनास्थल, मनोकामना की पूर्ति, धर्म से जुड़ी बाते, बास्तुशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान, रचनात्मक एवं सृजनात्मक चर्चाए – आम और सामान्य व्यक्तियों के लिए जो स्थान शहर में उचित एवं सर्वोप्रिय है, वह है – माता वैष्णो देवी की मंदिर।

गया में माता वैष्णो देवी यानि आचार्य प्रणव मिश्रा का "मानस मुक्ति केन्द्र", पिता महेश्वर, गया । माता वैष्णो देवी के प्रति भक्ति और कुछ भक्तों के सुझाव पर, प्राण–प्रतिष्ठा के साथ माता रानी की स्थापना हुई।

यह "मानस मुक्ति केन्द्र" 1994 से लगातार बिना जात–पात एवं वर्ग–वर्ण से उपर उठकर, पुरूष–महिलाऐं एव खासकर युवाओं को अपने धर्मज्ञान, सामाजिक–सांस्कृतिक स्वाभलम्बन, व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण, सम्य प्रगतिशील समाज निर्माण मे अहम् भूमिका निभा रही है। जो सर्वविदित है। प्रतिदिन सुबह–शाम विधिवत् आरती एवं प्रसाद वितरण होते रहता है और प्रत्येक शनिवार को भण्डारा का आयोजन भी हो रहा है।

राजनीति, अभिनय, नौकरी पेशा और व्यवसाय से जुड़े लोगों को मैंने लाभान्वित होते देखा है। छोटे–बड़े हर महत्वपूर्ण त्योहार में भजन–कीर्त्तन, जागरण एवं भण्डारा का आयोजन होते रहता है। आचार्य प्रणव मिश्रा और माता रानी की कृपा से मनोकामना की पूर्ति हाने से लोगों की आस्था और भीड़ बढ़ती जा रही है।

आचार्य प्रणव मिश्रा को शहर के अलावा जहाँ भी लोग जानते हैं– गुरू जी के नाम से ही जानते हैं। गुरूजी बताते हैं कि पिण्डदान में, जो दूसरा पिण्ड पड़ता है– वह 'उत्तर मानस' के नाम से ही प्रचलित है, वहीं पर यह 'मानस मुक्ति केन्द्र' अवस्थित है।

गुरूजी के द्वार किए जा रहे रचनात्मक कार्यो में खासकर युवाओं के विचारों में काफी परिवर्त्तन हुए हैं। इनकी कृपा से असाध्य रोगों का निवारण होते हुए भी देखा गया है। धर्मज्ञान की बाते करना, सुनना और इनके चमत्कार को देखना तभी संभव है जब लोग इनसे मिलेंगे या संपर्क में आयेंगे।

इनका कहना है कि "वसुर्धेवम्–कुटुम्बकम्" के भाव से ही 'मानस मुक्ति केन्द्र' की नींव डाली गयी(जो "बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय" की व्यापक भावनाओं को जीवन्त किया है। जानकारी और ज्ञान होने के साथ–साथ इनके बोलने की शैली इतनी आकर्षित करती है कि समय का पता ही नहीं चलता। भाषा–मधु एवं सरल स्वभाव से विनम्र एवं हँस–मुख व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

इन्होंने बताया कि साधना के क्षेत्र में ना कोई स्त्री और ना कोई पुरूष होता है – वह केवल साधक होता है। अकसर लोगों को यह कहते सुना है कि मैं पूजा–अर्चना तो भक्ति से करता हूँ पर फल नहीं मिल पाता है, तो ये कहते हैं कि जिस प्रकार सही नाम के पुकारने से ही अमुक व्यक्ति सुनता है उसी प्रकार मंत्रो के सही–सही उच्चारण से ही मंत्रों का फल मिलता है और भगवान भी प्रसन्न होते हैं।

हर विद्यवान को कहते सुना है कि स्नान करके ही पूजा–पाठ, भजन–कीर्त्त या अनुष्ठान करना चाहिए, पर गुरूजी कहते हैं कि जल से स्नान करके शरीर की सफाई की जा सकती है, आत्मा की नहीं। आत्मा का स्थान तो आँसु से होता है।

आचार्य प्रणव मिश्रा कहते हैं कि मनुष्य की यात्रा–शून्य से आरम्भ होकर ब्रह्म तक पहुँचती है और यह यात्रा–गुरू के माध्यम से ही संभव है।

!! इति !!

दिग्घी तालाब, गया

जीवन में माँ का महत्त्व

डॉ० संकेत नारायण सिंह

पितृपक्ष की अवधि ऐसी है कि इसमें हम अपने पूर्वजों को स्मरण करते हैं और उनकी दिवंगत आत्मा की चिर-शांति के लिए श्राद्ध के विभिन्न अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं। मनुष्य पर मातृ-पितृ-ऋण रहता है। अत: हमारे लिए वह अवश्यक है कि हम माँ की महत्ता को समझें।

माँ उस दिव्य शक्ति का नाम है जिस शक्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। माँ बच्चे के मुख से निकलने वाला वह पहला शब्द है, जिससे उसके हृदय को सुकून मिलता है। माँ देवी का रूप होती है, जिसके स्वर में गंगा की पवित्रता एवं सागर की गहराई है। भारत के अलग-अलग भागों में माँ को कई नाम से संबोधित किया जाता है। कुछ लोग अम्मी कहते हैं तो कुछ जननी, कुछ लोग मम्मी कहते हैं तो कुछ अम्मा, लेकिन ये सारे नाम एक ही दिशा की ओर संकेत करते हैं, वह है माँ।

हर किसी के जीवन में माँ का सबसे ज्यादा महत्व होता है। जितना महत्व इस रिश्ते का है, उतना किसी और रिश्ते का नहीं। माँ के बिना हमारा जीवन उसी प्रकार अधूरा है जिस प्रकार स्याही के बिना कलम या जल के बिना समुद्र।

माँ अपनी संतान को वह हर खुशी देती है जो और कोई नहीं दे सकता। वह अपनी संतान को पालपोस कर एक अच्छा इंसान बनाती है।

माँ सभी पेरशानियों का सामना करती है, लेकिन अपनी संतान पर कभी बुराई की छाया नहीं पड़ने देता। इसका कर्ज कभी अदा नहीं किया जा सकता, इसमें कोई इतिशयोक्ति नहीं है।

आज के कलयुग में तो अकसर ऐसा होता है कि कुछ बच्चे अपनी माँ की बातें नहीं मानते और न उनका मतलब समझते। वे हमेशा बुराई के पथ पर ही चलते हैं। जब उन्हें यह एहसास होता है कि वे गलत हैं तब बहुत देर हो चुकी होती है। अपनी संतान को दु:ख या परेशानी में देखकर माँ का दिल बैठ-सा जाता है और वह हर कोशिश करती है जो उसके संतान की परेशानी से बाहर ला सके।

माँ की और कोई अपनी इच्छा ही नहीं होती। वह तो अपना सर्वस्व अपने बच्चों को खुश करने के लिए न्योछावर कर देती है। इसीलिए तो कहा गया है''माँ स्वर्ग से भी बड़ी है''।

''कुपुत्रों जायेत, क्वचिदपि कुमाता न भवति।'' इसका तात्पर्य यह है कि पुत्र भले ही कुपुत्र हो सकता है, लेकिन माता कभी कुमाता नहीं हो सकती।

इस दुनिया की सारी माँ तो बहुत अच्छी है लेकिन सारी संतानें नहीं। कुछ संताने अपनी माँ को दु:ख और पीड़ा के सिा और कुछ नहीं देती। वह अपनी माँ से सिर्फ अपना मतलब निकालती है, खुशी दे ही नहीं सकती। तब माँ को चोट बहुत पहुँचती है, लेकिन वह बयान नहीं करती। वह तो अपनी संतान को आशीर्वाद ही दिया करती है। वह तो अपनी संतान का भविष्य उच्च शिखर पर ले जाने के प्रयास में लगी रहती है।

बच्चा चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो जाए, जब भी वह किसी तकलीफ में होता है, तो अपनी माँ को ही याद करता है।

माँ के परवरिश से ही बच्चे का पूर्ण-रूपेण विकास होता है। माँ एक पिता, देवी और मित्र का रूप लेकर अपने बच्चे की बात दिल से जुबान पर आने से पहले ही समझ लेती है। माँ-पिता की सेवा करना प्रत्येक संतान का कर्तव्य है, क्योंकि इससे बड़ा और कोई पुण्य नहीं। इसलिए प्रत्येक संतान का यह कर्त्तव्य है कि वह केवल पितृपक्ष में ही माँ-बाप के लिए पितर-पूजा न करे; वरन् माँ-बाप के जीते जी उनकी यथेष्ट सेवा करके अनन्त पुण्य का भागी बने।

संस्थापक, 'समर्पण', गेवाल बिगहा, गया
मो०-9431083141

भगवान् विष्णु का दिव्य स्वरूप

श्री लीला कान्त झा

सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। उनकी दिव्य व्यापकता निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार रूपमें हैं। उन्हींके उन्मेष और निमेष मात्र से संसार की उत्पत्ति और प्रलय होते हैं।

वे चराचर जगत् के सर्जक, पालक-पोषक, संहारक हैं। व्यापक होने पर भी वे एक देश में अवतरित होते हैं। इस प्रकार विचार दृष्टि से जो निर्गुण है, भाव दृष्टि से वही सगुण बन जाता है। जो अव्यक्त है, वही साधकों-भक्तों के लिए व्यक्त भी हो जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-चतुर्विध पुरुषार्थ प्रदान करने के लिए वे अपने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये रहते हैं। भगवान् नारायण विष्णु अत्यंत दयालु हैं। सभी जीवों पर उनकी अहैतुकी कृपा बरसती है। जो भक्त भगवान् के नामों का कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, गुणों का श्रवण और उनका पूजन करता है, भगवान् उस भक्त के सभी पाप-तापों को विनष्ट कर देते हैं। ध्रुव, गजराज, द्रौपदी आदि अनेक भक्तों की रक्षा उन्होंने की। धन्य है प्रभुकी भक्तवत्सलता। भक्त प्रहलाद चरित्र भगवान् विष्णु की भक्तवत्सलता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। वेदों में अनेक प्रकार से भगवान् विष्णुकी अनंत महिमा का गान किया गया है- **'न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप'** (ऋग्वेद-7/99/2)

'हे विष्णुदेव! कोई ऐसा प्राणी न तो उत्पन्न हुआ है और न होनेवाला है, जिसने आपकी महिमा का अन्त पाया हो।'

वैदिक पुरुष सूक्त में जिस परमात्मतत्त्व का निरुपण किया गया है, वह विष्णु तत्त्व ही है। भगवान् श्री हरि की महिमा का सभी शास्त्रों में गान हुआ है।

'वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।।'

(हरिवंश पुराण-3/132/95)

इसलिए भगवान् नारायण ही परम ध्येय हैं, परम उपास्य हैं और ये ही समस्त शास्त्रों के सारतत्त्व भी हैं। ऋषि, पितर, देवता, पंचमहाभूत, धातुएँ और स्थावर-जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत्-ये सभी नारायण से ही उत्पन्न हुए हैं।

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः।
जंगमाजगमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम्।।

(महाभारत,अनु ाासनपर्व विष्णुसहस्रनाम-138)

यजुर्वेद कहता है-''**अजायमानो बहुधा विजायते**'' अर्थात् नारायण जन्म नहीं लेते हैं, फिरभी बहुत प्रकार से प्रकट होते हैं। नारायण भीतर रहकर पृथ्वी, जल, अग्नि, अंतरिक्ष, वायु, सूर्य, चन्द्र, तारे, आकाश, अंधकार, तेज, आत्मा आदि सभी को नियमित करता है। **सहस्रशीर्षा पुरुषः**-हजारो सिरवाला पुरुष नारायण है।(ऋग्वेद)। भगवान् विष्णु के हजार आँखें तथा हजार पैर हैं।

अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमं गतिम्। (वाराहपुराण)

अर्थात् मैं अपने भक्त को स्मरण करता हूँ और परम गति में पहुँचा देता हूँ। भगवान् नित्य सेवा स्वीकार करते हैं। नरसिंह पुराण कहता है- ''जो शंख, चक्र, गदा, पद्म, किरीट और कुण्डलों से विभूषित, सुन्दर कमलों के समान नेत्रवाले, वनमाला तथा कौस्तुभ मणि धारण करनेवाले एवं श्रीदेवी और भूदेवियों के साथ नित्य रहनेवाले शेषशायी नारायण का ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है।''

श्रीमद्भागवत में देवर्षि नारद द्वारा ध्रुव के लिए निरुपित भगवत्स्वरूप बड़ा ही सुन्दर है। भगवान् विष्णु के मुखारबिन्दु से प्रसन्नता झलक रही है। वय में तरुण हैं। (वे हमेशा किशोर रहते हैं। उनकी आयु 15 वर्ष से ज्यादा कभी नहीं होती है।) उनके सभी अंग-प्रत्यंग रमणीय हैं। वे शरणागतों के रक्षक और करुणावरुणालय हैं। उनके वक्षस्थल के दक्षिण भाग में श्रीवत्स अथवा भृगु पद का चिह्न सुशोभित है। वे घनश्याम हैं तथा समस्त प्रपंच में अपनी अतर्क्य-शक्ति के प्रभाव से व्याप्त हैं। गले में वे आजानुलम्बिनी

वनमाला धारण किए हुए हैं, जिसमें समस्त ऋतुओं के सुगंधित पुष्प ग्रथित हैं और मध्य में कदम्ब कुसुम भी लगा हुआ है। वे अपने चारों कर कमलों में क्रमशः पांचजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, क्रौमोद की गदा और एक लीला पद्म धारण किए हुए हैं। उनके मस्तक पर किरीट मुकुट की रत्नावली छिटक रही है और कानों में मकरा त कुंडल चमक रहे हैं। बाहुओं में केयूर और कलाइयों में रत्न-खचित कंकण विराज रहे हैं। ग्रीवा पद्मराग-मणिमय कौस्तुभ नामक रत्न की शोभा बढा रही है। कोमल मंजुल पीताम्बर धारण किए हुए हैं। नारद जी कहते है- कहाँ तक कहें, त्रिलोकी में जितने भी दर्शनीय हैं, नारायण उन सबसे अधिक आकर्षक हैं।

इसीप्रकार की मनोरम झाँकी का दिव्य दर्शन अर्जुन को होते हैं, जब श्री कृष्ण उन्हें एक मृत ब्राह्मण के उद्धार कराने के लिए ले चलते हैं।

'महामणिव्रात किरीट कुण्डल प्रभापरिक्षिप्त सहस्रकुन्तलम् ।

प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम्।।'

(श्रीमद्भागवत-10/89/56)

ऐसे भक्तवत्सल भगवान् की भक्तों पर परम अनुकंपा रहती है। प्रभु का नाम स्मरण मात्रही सब प्रकार के पापों का नाश कर देता है। इतिहास पुरानों में इस संबंध में अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। भगवान् द्वारा हरि रूपमें गजेन्द्र का उद्धार, भक्तश्रेष्ठ ध्रुव के लिए भगवान् का अवतार, अजामिल उद्धार आदि अनेक कथाएं हैं। भगवान् की दिव्यता और भक्तवत्सलता का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है ? बहुत दिनों तक अपवित्र अन्न खाने और कुलटा स्त्री की संगति से अजामिल अत्यंत पापी हो गया था। मरने के समय उसने अपने सबसे छोटे और लाड़ले पुत्र का नाम लिया और नारायण नारायण कहा। नारायण उसके पुत्र का नाम था। अजामिल के मरने पर हाथों में फंदा लिए हुए यमदूत उसे लेने आए। परन्तु नारायण का उच्चारण सुनते ही भगवान् विष्णु के पार्षद अजामिल के पास पहुँच गये और उसे यमदूतों से मुक्त कराया। पार्षदों ने कहा- ''जिस समय इसने ना-रा-य-ण -- इन चार अक्षरों का उच्चारण किया, उसी समय केवल उतने से ही अजामिल के समस्त पापों का प्रायश्चित हो गया। यमदूतों ! जैसे जान या अनजान में ईधन का अग्नि से स्पर्श हो जाय, तो वह भस्म हो जाता है, वैसेही जान बूझकर अथवा अनजाने में भगवान् के नामों का संकीर्तन करने से मनुष्य के सारे पाप भस्म हो जाते हैं।''

'अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तम लोकनाम यत् ।

संकीर्तितमघं पुंसो दहे देधो यथा नलः।।'

(श्रीमद्भागवत-6/2/18)

पापी दुरात्मा अजामिल ने नारायण नाम का उच्चारण मात्र से भगवत् कृपा का अनुभव कर कालान्तर में विष्णुलोक प्राप्त किया। भक्त जिस भावना से उनकी शरण ग्रहण करते हैं, जिस कामना से उनका भजन करते हैं, वे उनकी उस उस कामना-भावना को अवश्य पूर्ण करते हैं।

धर्मार्थी प्राप्नुयात् धर्मः अर्थार्थी च अर्थमाप्नुयात् ।

कामानवाप्नुयात् कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम् ।।

(महाभारत,अनुशासनपर्व विष्णुसहस्रनाम-124)

अर्थात् धर्म की इच्छा रखनेवाला धर्म को पाता है, अर्थ की इच्छा रखनेवाला अर्थ को पाता है, भोगों की इच्छा रखनेवाला भोग को पाता है और प्रजा की इच्छा रखनेवाला प्रजा पाता है।

धन्य है भगवान् की दिव्यता और धन्य है इनकी भक्तवत्सलता !

गया का पितृपक्ष मेला प्रत्येक वर्ष भाद्र शुक्लपक्ष अनंत चतुदर्शी के दिन से प्रारंभ होता है और आ विन कृष्णपक्ष अमावस्या तक चलता है। इस वर्ष यह मेला 18 सितम्बर से प्रारंभ होकर 04 अक्टूबर तक चलेगा। लगभग 17 दिनों तक चलनेवाले इस मेले में भारत के कोने-कोने से तथा विदशों से लाखों की संख्या में हिन्दू धर्मावलंबी तीर्थयात्री गया पधारते हैं और अपने पूर्वजों की आत्मा की चिरशान्ति के लिए निर्धारित विधि से श्राद्ध-क्रिया करते हैं। मैं आशा करता हूँ कि बाहर से आनेवाले श्रद्धालुओं का गया प्रवास सुखमय, शान्तिमय एवं सब प्रकार से कष्टरहित होगा। इत्यलम्।

पटेल नगर, पटना-800023

गुरु-महिमा

डॉ० सोनू अन्नपूर्णा

''गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।''

हमारे संस्कृत ग्रंथों में गुरु को ब्रह्म और ईश्वर के समान माना गया है और देवों के समान गुरु की महिमा भी अपरम्पार मानी गई है। गुरु वह है, जो राह दिखाए। गुरु वह है जो कुपथ से हटा सुपथ पर चलने की प्रेरणा दे। इसलिए संत कवि तुलसीदास गुरु के चरण-कमलों की वंदना करते हए कहते हैं- 'बंदउँ गुरु पद पदुम परागा'। इससे आगे वे गुरु के चरण-नखों की भी वंदना करते हैं, जिसकी ज्योतिमणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण से ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। यह प्रकाश अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाला है।

''श्रीगुर पद नख मनि गन जोती,
सुमिरत दिव्य दृष्टि दियँ होती।।''

ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाला गुरु ही होता है। अतः ज्ञान-प्राप्ति के लिए गुरु का ही सहारा लेना पड़ता है। हमारे पुण्य के फलस्वरूप ही हमें सच्चे गुरु की प्राप्ति हो सकती है। राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न तथा कृष्ण ने भी गुरु के सान्निध्य में रहकर ही शस्त्र-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। अतः गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं। बिना वैराग्य के भी ज्ञान-प्राप्ति संभव नहीं। तुलसीदास ने कहा है- 'बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु।'

गुरु की कृपा उस शिष्य को ही मिलती है, जिसके पास शिष्यत्व की पात्रता हो अर्थात् शिष्य में भी कुछ ऐसे गुण होने चाहिए, जिससे उसे गुरु-कृपा का प्रसाद मिल सके। सच्चा शिष्य वही है, जो विवेकी हो, त्यागी हो, ईश्वर-प्राप्ति का इच्छुक हो तथा उसकी गुरु में सच्ची निष्ठा हो। तभी वह गुरु का सच्चा शिष्य होने का पात्र बनता है। श्रीरामकृष्ण परमहंस का कहना है कि 'सामान्य गुरु कान फूँकते हैं, जबकि सद्गुरु प्राण फूँकते हैं।' इस दृष्टि से देखें तो बहुत से ऐसे महापुरुष, जिन्होंने हमें एक नई दृष्टि दी है, अंधकार से प्रकाश की ओर जाने की राह दिखाई है और समाज को कुमार्ग से सुमार्ग पर लाने की चेष्टा की है, वे सभी गुरु की श्रेणी में आ जाते हैं। इनमें संत ज्ञानेश्वर महर्षि दयानंद स्वामी विवेकानंद, चैतन्य महाप्रभु आदि सभी सद्गुरु ही हैं। इस तरह, देखा जाय तो गुरु वे हैं, जो ज्ञान से पूर्ण तथा आध्यात्मिक शक्ति-सामर्थ्य वाले होते हैं, जो शिष्यों के संशय को दूर कर उनमें नवजीवन का संचार करते हैं।

वास्तव में गुरु ज्ञान की उस जलती मशान के समान होते हैं, जो शिष्यों के अज्ञान-तिमिर को मिटाकर उनका पथ प्रशस्त करते हैं और जीवन की हर मुश्किलों से बाहर निकलने का मार्ग सुझाते हैं। इस तरह गुरु चेतना के पुंज होते हैं, ज्ञान के आगार होते हैं, ईश्वर के प्रति समर्पित होते हैं तथा शिष्यों को भी ईश्वरोन्मुख करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे गुरु को पाकर कोई भी शिष्य धन्य हो सकता है। इसलिए तुलसीदास बार-बार गुरु-चारणों की वंदना करते हैं और कहते हैं।

''बंदउ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि। महामोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर।।''

अर्थात् मैं उन गुरु-चरणों की वंदना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर-रूप में श्रीहरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार के नाश के लिए सूर्य-किरणों के समूह हैं।

भारतीय साहित्य और संस्कृति में गुरु को बहुत सम्मानजनक स्थान दिया गया है। उनकी वंदना की गई है, उनकी अभ्यर्थना की गई है। गुरु के वचन का पालन करना सबका कर्त्तव्य है, धर्म है। गुरु भी शिष्य के मोह, लोभ, अविवेक तथा भ्रम-रूपी अंधकार का समूल नाश कर उसे दिव्य विवेक-दृष्टि प्रदान करता है। ऐसे ही परम कृपालु गुरु के बारे में कबीर ने कहा है-

''गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपनो, जो गोविंद दियो बता।।''

आधुनिक युग की बात करें। तो आज गुरु एवं शिष्य दोनों की ही परिभाषा बदल गई है। आजकल कई प्रकार के गुरु पाए जाने लगे हैं। ऐसे-ऐसे स्वार्थी और लोभी गुरु आज जगह-जगह मिल जाते है, जिनसे शिष्य का न तो कल्याण हो सकता है, न सही मार्गदर्शन हो सकता है। आज शिष्य भी ऐसे हो गए हैं, जो गुरु की बात ही नहीं सुनते। ऐसे ही गुरु-शिष्यों का वर्णन करते हुए

तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकांड' में 'कलि-वर्णन-प्रसंग' में कहा है-

''गुरु सिष वधिर, अंध का लेखा। एक न सुनइ, एक नहिं देखा।''

अर्थात् आज (कलियुग में) गुरु अंधा तथा शिष्य बहरा हो गया है यानी गुरु के पास ज्ञान की दृष्टि नहीं तथा शिष्य के पास उपदेश सुनने योग्य कान ही नहीं हैं।

निष्कर्षत: आज समाज में चहुँ ओर व्याप्त नैतिक मूल्यों के पतन, भ्रष्टाचार आदि को देखते हुए हमें तथा हमारे समाज को ऐसे गुरुओं की आवश्यकता है, जो राम, कृष्ण, महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे वीर तथा स्वामी विवेकानंद, दयानंद, तिलक, गाँधी तथा अन्ना जैसे महान् त्यागी, विचारवान, ईमानदार, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ और सबसे बढ़कर राष्ट्र के प्रति समर्पित शिष्यों का निर्माण करे ताकि हमारा समाज पथभ्रष्ट होने तथा राष्ट्र पददलित होने से बच सके और हमारी प्राचीन- सदियों पुरानी भारतीय संस्कृति और उसकी गरिमा बनी रहे।

वरीय व्याख्याता, हिन्दी विभाग, गया कॉलेज, गया

भक्त भद्रतनु पर भगवान् विष्णु की कृपा

श्री शिव वचन सिंह

गया विष्णु तीर्थ है और यह पितृतीर्थ भी है। गया में तार्थयात्री अपने पूर्वजों की आत्मा की चिरशान्ति के लिए पधारते हैं और इस निमित्त तर्पण, पिण्डदान और श्राद्ध करते हैं। भगवान् विष्णु की रूप-माधुरी और उनका वैभव अपार है, वर्णनातीत है। श्रीमद्भागवत में देवर्षि नारद द्वारा ध्रुव के लिए निरूपित भगवत्स्वरूप बड़ा ही सुन्दर है। त्रिलोकी में जितने भी दर्शनीय हैं, भगवान् सबसे सुन्दर हैं। भगवान् द्वारा गजेन्द्र उद्धार, भक्त ध्रुव और प्रहलाद की कथा, अजामिल पर कृपा सब कोई जानते हैं। हम यहाँ भक्त भद्रतनु की कथा के माध्यमसे भगवान् विष्णु की अकारण कृपा की वर्षा करने का उल्लेख कर रहे हैं।

प्राचीन समय में पुरुषोत्तमपुरी में भद्रतनु नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह देखने में सुन्दर और पवित्र कुल में उत्पन्न हुआ था, परन्तु बचपन में ही उसके माता-पिता उसे अनाथ करके चल बसे। कोई संरक्षक न होने से भद्रतनु युवावस्था में कुसंग में पड़ गया। कुसंग के प्रभाव से भद्रतनु स्वाध्याय, संयम, नित्यकर्म आदि से विमुख हो गया। सत्य, अतिथि-सत्कार, उपासना आदि सब उसके छूट गये। वह धर्म का निन्दक हो गया, सदा परधन और परस्त्री को पाने की घात में रहने लगा। भोगासक्त और काम-क्रोध परायण हो गया। जुआ, चोरी, मदिरापान प्रभृति दोष उसमें आ गये।

नगर के मध्य में सुमध्या नामकी एक सुन्दरी वेश्या रहती थी। बुरे संग में पड़ कर उसका भी पतन हो गया था, किन्तु इस वृत्ति से उसे बहुत घृणा थी। अपनी दशा पर वह सदा दुखी रहती, पछताती। उसके हृदय में धर्म का भय था, परलोक पर विश्वास था, ईश्वर पर आस्था थी। अपनी उद्धार के लिए वह भगवान् से सदा प्रार्थना करती रहती थी।

भद्रतनु का सुमध्या पर वासनामय प्रेम था, परन्तु सुमध्या उससे सचमुच प्रेम करती थी। वह भद्रतनु को जुआ, शराब आदि के भयंकर परिणाम बतलाकर उसे दोषमुक्त करने के प्रयत्न में लगी रहती थी।

एक दिन भद्रतनु के पिता का श्राद्ध दिवस आया। श्रद्धा न होने पर भी लोक-निन्दा के भय से उसने श्राद्धकर्म किया, परन्तु उसका ध्यान सुमध्या में लगा रहा। श्राद्धकर्म से छुटकारा पाते ही वह वे या के यहाँ पहुँच गया। सुमध्या ब्राह्मण की मुर्खता पर हँसने लगी। उसे भद्रतनु पर क्रोध आ गया। उसने कहा-' अरे ब्राह्मण धिक्कार है तुझे। तेरे जैसा पुत्र होने से अच्छा था कि तेरे पिता पुत्रहीन ही रहते। अरे, तेरे पिता का श्राद्ध दिन है और तू निर्लज्ज होकर एक वेश्या के यहाँ आया है। मेरे इस शरीर में हड्डी, मांस, रक्त, मज्जा, मेद, मल, मूत्र आदि के सिवा और क्या है? ऐसे घृणित शरीर में तूने क्यों सौन्दर्य मान लिया है? मैं तो वे या हूँ, अधम हूँ, मुझ पर आ ाक्त होने में तो तेरी अधोगति ही होनी है। यही आशक्ति यदि तेरी भगवान् में होती, तो पता नहीं, अबतक तू कितनी ऊँची स्थिति को पा लेता। इस जीवन का क्या ठिकाना है, मृत्यु तो सिर पर ही खड़ी है। तू इस अल्पजीवन में क्यों पाप में लगा है?विचार कर। मन को मुझसे हटाकर भगवान् में लगा। भगवान् बड़े दयालु हैं, वे तुझे अवश्य अपना लेंगे।'

सुमध्या के वचनों का भद्रतनु पर बहुत प्रभाव पड़ा। वह सोचने लगा–सचमुच मैं कितना मूर्ख हूँ। एक वे या में जितना ज्ञान है, उतना भी मुझ दुरात्मा में नहीं। जब मृत्यु निश्चित है और पाप का दंड भोगने के लिए यमराज के पास जाना ही होगा, तो मैं क्यों पाप करूँ ? मैने तो जप, तप, अध्ययन, पूजन, हवन, तर्पण आदि कुछ भी नहीं किए, फिर मुझे पापों से छुटकारा कैसे मिलेगा ? इस प्रकार प चाताप करता हुआ वह सुमध्या को पूज्य भाव से प्रणाम करके लौट आया और मार्कण्डेय मुनि के समीप गया। वह मार्कण्डेय मुनि के चरणों पर गिर पड़ा और फूट–फूटकर रोने लगा। मुनि ने भद्रतनु की बात सुनकर बड़े स्नेह से कहा– 'तुम्हारी बुद्धि पाप से अलग हुई, यह तुम पर भगवान् की कृपा है। जो पहले पापी रहा हो और पाप प्रवृत्ति छोड़कर भगवान् के भजन का निश्चय कर ले, तो वह भगवान् का प्रिय पात्र है। भगवान् ही उसे पाप से दूर होने की सद्बुद्धि देते हैं।' मुनि ने आगे कहा कि इस समय मैं एक अनुष्ठान में लगा हूँ, इसलिए तुम दान्तमुनि के पास जाओ। वे सर्वज्ञ महात्मा तुम्हें उपदेश करेंगे।'

भद्रतनु वहाँ से दान्तमुनि के आश्रम पर गया। उसने मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर प्रार्थना की–'महात्मन्! मैं जाति से ब्राह्मण होते हुए भी महापापी हूँ। मैंने सदा पाप ही किए हैं। कृपया मुझ पापी के लिए संसार बंधन से छूटने का उपदेश दीजीए।' दान्तमुनि ने पापूर्ण स्वर में कहा–'भाई, भगवान् की कृपा से ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी हुई है। मैं तुम्हें वह उपाय बतला रहा हूँ, जिससे मनुष्य सहज ही भव–बंधन से मुक्त हो जाता है।' तुम काम, क्रोध आदि का त्याग कर स्थिरचित्त हो 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मंत्र का जप करो। इसके फलस्वरूप तुम्हें शीघ्र ही भगवत्दर्शन होंगे। अद्रतनु दान्तमुनि से उपदिष्ट होकर एकान्त में जाकर मन लगाकर श्रद्धापूर्वक निष्ठा से भजन तथा जप करने लगा। भगवान् की अनन्य भक्ति से भद्रतनु का हृदय निर्मल हो गया। उसपर कृपा करने के लिए दयामय भगवान् विष्णु प्रकट हुए। फावान् का दर्शन पाकर भद्रतनु गद्गद् हो गया। उसने भगवान् की स्तुति की। प्रभुने भद्रतनु को हृदय से लगा लिया। भद्रतनु ने प्रभु के चरणों में जन्म–जन्म का अनुराग रहे, ऐसा वरदान माँगा और परमगति को प्राप्त किया। धन्य है–भगवान् की भक्तवत्सलता और उनकी अहैतुकी कृपा।

जन्मजन्मनि मे भक्तिस्त्वय्यस्तु सुदृढा प्रभो।

(पद्मपुराण क्रियायोग 17/91)

भगवान् ने उसे 'सख्यभक्ति' प्रदान की। भद्रतनु के अनुरोध पर उसके गुरु दान्तमुनि को भी प्रभु ने दर्शन दिए। दान्तमुनि ने भगवान्से भक्ति का ही वरदान माँगा।

अधिवक्ता, कोयरीबारी, गया

पितृभक्ति–श्राद्ध और तर्पण

आचार्य डॉ० गोपाल कृष्ण झा

(ज्योतिष गणित–फलित–साहित्याचार्य, एम०ए० द्वय, पी०एच–डी)

द्वारिकापुरी में कर्मनिष्ठ तप: पुत्र वेदज्ञ ब्राह्मण शिव शर्मा निवास करते थे। उनके पाँच पुत्र यज्ञशर्मा, वेदशर्मा, धर्मशर्मा, विष्णुशर्मा तथा सोमशर्मा के नाम से विख्यात पितृभक्त थे। ये सभी पुत्र सदाचारी संस्कारी, बुद्धिमान, वेदशास्त्रों के मर्मज्ञ तो थे ही मात्–पितृ भक्ति में अटूट श्रद्वा भी रखते थे। इनके दिव्य संस्कार तथा सेवाभाव को देखकर इनके पिता काफी प्रसन्न रहते थे। एक दिन इन्होंने पुत्रों की परीक्षा लेने का मन बना लिया। ब्रह्मवेत्ता होने के कारण बुद्धि प्रपञ्च में महारथ हासिल था इन्हें माया द्वारा पुत्रों के सामने एक घटना उपस्थित कर दिया फलत: उनकी पत्नी ज्वराक्रान्त होकर मृत्यु को प्राप्त कर गयी। तब पाँचों पुत्र उर्ध्वदैहिक क्रिया के लिए आदेशार्थ पिता के पास गये। तो पिता ने ज्येष्ठ पुत्र यज्ञपारायण यज्ञशर्मा से कहा कि बेटा ! तेज हथियार से अपने माताजी के मृत शरीर को टुकड़े–टुकड़े करके इधर–उधर कौअे चिल्हों के सामने फेंक दो। पितृ आज्ञानुसार ज्येष्ठ पुत्र ने वैसा हीं किया। जब पिता को जानकारी मिली जो–जो हम चाहते थे वैसा ही हुआ तो उन्हें ज्येष्ठ पुत्र की भक्ति से सन्तुष्टी मिल गई। इसके बाद दूसरे पुत्र की पितृभक्ति जानने का विचार किया। वेदशर्मा से कहा कि बेटा तुम्हारी माँ तो हमें छोड़कर चली गई अब मेरा जीवित रहना सम्भव नही है। यदि मुझे जीवित रखना चाहते हो तो एक सुन्दर स्त्री ढूढ़कर ला दो.....। पिता के आदेशानुसार वेदशर्मा उन्हें प्रणाम कर उनके आदेशों का अनुपालनार्थ प्रस्थान कर गया। रास्ते में एक सुन्दरी स्त्री मिली उनसे प्रार्थना तथा अनुरोध

कर कहा कि यदपि मेरे पिता वृद्ध और बीमार हैं फिर भी उन्हें आपकी आवश्यकता है, साथ चलें तथा मेरी प्रार्थना को स्वीकार करने की कृपा करें। ऐसा वचन सुनकर पिता की माया से उत्पन्न उस स्त्री ने कहा ब्रह्मण्। तुम्हारे पिता वृद्ध तथा कष्टों से पीड़ित कालकवलित होने ही वाला है, मैं कदापि उन्हें स्वीकार नहीं करूँगी। वे मुझसे समागम करने में सक्षम नहीं होंगे। सच पूछो तो मैं तुम्हारे साथ रमण करना चाहती हूँ। तुम दिव्य गुणों से सम्पन्न तेजस्त्री ब्राह्मण पुत्र हो। विप्रवर। तुम जो चाहोगे वहीं करूँगी.....।

यह पापपूर्ण अप्रिय कटु वचन सुनकर वेदशर्मा ने कहा देवी। तुम्हारा वचन अधर्म पापमिश्रित और अनुचित भी है। मैं पिता का भक्त निरपराध हूँ। मेरी प्रार्थना सुनो मेरे पिता को स्वीकार कर लो। तब उस स्त्री ने कहा कि तुम यदि इतना ही अपने पिता को चाहते हो तो अपना सिर काटकर मेरे चरणों में रखों, तो मैं अवश्य तुम्हारे पिता को स्वीकार कर लूँगी। यह सुनकर पितृभक्त वेदशर्मा धन्य हो गया तुरन्त अपना सिर काटकर स्त्री के चरणों पर रख दिया। खून से लथपथ मस्तक लेकर स्त्री शिवशर्मा के पास गयी। उन्होंने ब्राह्मण से कहा तुम्हारा पुत्र वेदशर्मा मुझे तुम्हारी सेवा के लिए भेजा है। उस मस्तक को देख शेष चारों भाई कांप उठे.....। यह देख शिवशर्मा को दूसरे पुत्र की पितृभक्ति का भी प्रमाण मिल गया। तब उन्होंने तृतीय पुत्र धर्मशर्मा से कहा जाओ इसे जीवित कर दिखाओं। धर्मशर्मा पिता को प्रणाम कर धर्मराज के पास जाकर कहा पुत्रों यदि मैंने पितृभक्ति या तपबल मैंने किया है तो उसके बल पर मेरे भाई को जिन्दा कर दीजिए। धर्मराज प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और वेदशर्मा जीवित हो उठा। पूरा वृतान्त सुनकर दोनों भाई गले मिले और पिता के पास पहुँचकर धर्मशर्मा ने कहा आपके आदेश का पालन कर बड़े भाई को जीवित कर ले आया हूं इन्हें स्वीकार की जाय।

तदनन्तर शिवशर्मा अतिप्रसन्न हुए, उन्हें तीनों पुत्रों के पितृभक्ति का जांच हो गया अब चौथा पुत्र विष्णुशर्मा से कहा बेटा ! मैं चाहता हूँ अभी तुम इन्द्रलोक जाकर 'अमृत' ले आओ। मैं इस प्रियतमा के साथ इस समय अमृत का रस पान करना चाहता हूँ; क्योंकि अमृत से सभी रोगों का निवारण हो जाता है। इस तरह धर्मात्मा बुद्धिमान विष्णुशर्मा पिता को प्रमाण तथा प्रदक्षिणा कर अपने तपबल प्रभाव से इन्द्रलोक की यात्रा पर चल पड़े। देवराज को उनका उद्देश्य ज्ञात हो गया तथा बाधा डालने के लिए मेनका से कहा सुन्दरी ! मेरी आज्ञा से शीघ्र ही विष्णुशर्मा के कार्य में बाधा डालो। सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित सुन्दरी अप्सरा नन्दनवन में झूला पर बैठकर मधुर स्वर में गीत गाने लगी, लेकिन तेजस्वी ब्राह्मण बालक मनोदशा को समझ निर्वाध गति से आगे बढ़ गया। मेनका ने कहा प्रियवर इतनी जल्दी क्यों ?मैं कामदेव के वाणों से घायल होकर तुम्हारी शरण में आयी हूँ। यदि धर्म का पालन करना चाहते हो तो मेरी रक्षा करो.....।

तब विष्णुशर्मा बोले मुझे देवराज का सम्पूर्ण चरित्र मालूम है; मुझ पर तुम्हारा जादू नहीं चलेगा। यह कहकर योगसि) महात्मा इन्द्र के पास पहुँच कर सारा वृतान्त सुनाया। क्रोधित बाह्मण पुत्र को देख इन्द्र बोले महाप्रज्ञ विप्र ! तपस्या यम-नियम-संयम-सत्य और शौच के बल पर तुम्हारी समानता करना दूसरों के लिए असम्भव है। तुम्हारी पितृभक्ति से हम सभी देवतागण प्रसन्न हैं। तो तब विष्णुशर्मा ने कहा हे देवेन्द्र यदि प्रसन्न हैं, तो मुझे अमृत दिजिए तथा जन्मजन्मान्तर तक पितृभक्ति प्रदान करें। वैसा ही हुआ इन्द्र से 'अमृत' ग्रहण कर पिता के चरणों में समर्पित कर इन्हें ग्रहण करने के लिए निवेदन भी किया।

तदनन्तर शिवशर्मा सभी पुत्रों को बुलाकर कहा कि मेरे सभी पुत्र धन्य है। मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ तुम्हारे कर्त्तव्यों से अब मुझसे वर माँगों। सभी भाइयों ने कहा हे सुव्रत। यदि आप प्रसन्न हैं, तो हमारी माताजी को जीवित करने की कृपा की जाय। यही हुआ पुत्रवत्सला माता जीवित हो उठी और पुत्रों से कहने लगी। मेरे सौभाग्य पुत्रों ! संसार में पुण्यत्मा स्त्री पुण्यवान पुत्रों की कामना करती हैं। मेरे पूर्व जन्मार्जित पुण्यों का प्रभाव ही है, जो तुम सभी जैसे पुत्रों की माँ बनने का सौभाग्य मुझे मिला है। पुण्यात्मा धर्मप्राण- धर्मात्मा धर्मवत्सल महात्मा मुझे पति रूप में मिला है। मेरे सभी पुत्र पितृभक्ति में रत है; इससे बढ़कर प्रसन्नता क्या हो सकती है ? इस प्रकार माता के वचन को सुनकर पुत्रों में प्रसन्नता हुई। पुत्रों ने कहा हम सबों की अभिलाषा है, कि प्रत्येक जन्म में तुम दोनों ही माता-पिता हों।

शिवशर्मा ने पुत्रों को वर माँगने को कहा। सभी पुत्रों ने एक स्वर में कहा हे पिता यदि वरदान देना चाहते हैं तो 'अक्षय' लोकों का उपयोग करने का वर दिजीए साथ ही भगवान श्रीविष्णु गदाधर के गोलोक धाम में हमें भेज दिजीए। जहाँ किसी प्रकार की विघ्न बाधा चिन्ता कभी नहीं फटकती है। पिता श्री शिवशर्मा अपने पुत्रों को निष्पाप तपस्या और पितृभक्ति के बल पर वैष्णवधाम जाने का आशीर्वाद दिया। तभी श्रीविष्णु शंख-चक्र-गदा और पद्म से सुशोभित गरूड़ पर सवार होकर पहुँच गये तथा

पुत्रों सहित शिवशर्मा को सपत्नीक अपने धाम में जगह प्रदान किया। लेकिन शिवशर्मा ने कहा भगवन्। मेरे चार पुत्रों को अपने धाम ले जाए। मैं अपने कनिष्ठ पुत्र सोमशर्मा के साथ भूलोक पर रहूँगा।

सत्यभाषी महर्षि शिवशर्मा के कहने पर उनके चार पुत्र दाह और प्रलय सहित गोलोक धाम को प्रस्थान किए। वे सभी विष्णु स्वरूपधारी महान तेजस्वी द्विज पितृभक्ति के प्रभाव से श्रीविष्णुधाम को प्राप्त हो गये।

सोमशर्मा की पितृभक्ति :- चार पुत्रों के पितृभक्ति का परीक्षण तो पहले हो चुका है। अब की बार सोमशर्मा का परीक्षण प्रारम्भ हो गया। पिता ने कहा अब मात्र तुम्हारी आशा है हम दोनों का देख-रेख तुम्हें ही करना है। फलतः यह 'अमृत कलश' मैं तुम्हें सौंप कर तीर्थ यात्रा पर जा रहा हूँ। इसका देख-रेख ठीक से करना। यह सुनकर सोमशर्मा ने कहा महाभाग ऐसा ही होगा तथा दस वर्षों तक रक्षा करने के पश्चात महात्मा शिवशर्मा अपनी तीर्थाहन से लौट गये। तथा माया के प्रभाव से दोनों पति-पत्नि कुष्ठ रोगी हो गये। धीरचित पुत्र सोमशर्मा उनके चरणों की सेवा में दिन-रात एक कर दिया। घृणा तो दूर प्रतिदिन घावों को धोता था। उनके मल-मूत्र-कफ से वेष्टित वस्त्रों को धोते चरण पखारते थे। दोनों (मातृ-पितृ) को कन्धा पर बिठाकर तीर्थाटन करवाते थे। उन्हें उत्तम भोजन-फल-फुल-कन्दमूल खिलाते सेवा करते थे। लेकिन ठीक विपरीत माता-पिता नित्य कठोर वचन बोलकर डाँरते फटकारते थे। इतना होने पर सोमशर्मा को कोध्र नहीं होता सदा सन्तुष्ट रहकर मन-वाणी और क्रिया तीनों के ही द्वारा माता-पिता की पूजा करते थे।

शिवशर्मा माया के प्रभाव से अमृत को कलश से गायब कर दिया और कहा मैंने जो अमृत दिया वो कहाँ है जल्दी लाकर मुझे दो मैं उसका पान करूँगा।

पिता की आदेश से जब अमृत लाने गया तो नही मिला यह देखकर सौभाग्यशाली सोमशर्मा अपने तपबल से उसमें अमृत भरकर वह घड़ा पिता को समर्पण किया। यह देखकर अपने पुत्र के तप से सन्तुष्ट हो गया तथा उसके सामने विकृत रूप को दोनों ने त्यागकर पूर्व रूप में आ गये। यह स्वरूप देख सोमशर्मा काफी प्रसन्न हुए। तथा पुत्र पत्नी सहित शिवशर्मा श्री विष्णुलोक को प्राप्त हुए।

आज विकास तो हो रहा है लेकिन संस्कारों का विनाश होता जा रहा है। जिसने हमें जन्म दिया प्रतिपालन किया आज उसकी सुधि व्यक्ति या समाज को नहीं है। 'वृद्धाश्रम' की कल्पना हो रही है उन्हें जीवित रखने के लिए सामाजिक संस्था या सरकार से गुजारिश करना पड़ रहा है; फिर भी यदि वे जीने की जुर्रत करते हैं, तो उन्हें या तो बेघर कर दिया जाता है। या जान से मार दिया जाता है। जगह-जगह पर वृद्ध दम्पतियों की हत्या सम्पति के लिए की जा रही है। आज तुलसी का वह चौपाई जिसके द्वारा बच्चों की शिक्षा दी जाती थी 'प्रातकाल' उठकर रघुनाथा मातुपिता गुरु नावहीं माथा।' नियामानुसार सर्वप्रथम माता-पिता देवता तथा श्रेष्ठ जनों को प्रणाम कर आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिए। अब समाज में वैसा कुछ देखने को नहीं मिल रहा है। एक लोक कहावत है। **"पुत्र गेल परदेश देव पितर साथे चलिगेल।"** तात्पर्य यह है कि पढ़ना लिखना तरक्की करना तो अच्छी बात है, लेकिन अपने बुनियादि आदर्श जिस पर मानव धर्म टिका हुआ है उसे जरूर पालन करने की आवश्यकता है। आज सर्वत्र सद्भावना, भाईचारा का अभाव आखिर क्यों ? तो इसका सही उत्तर होगा आचरण में गिरावट तथा भौतिक विचारों की अभिवृद्धि।

अभी आप पुराणों में वर्णित शिवशर्मा के पांचों पुत्रों की पितृभक्ति की कथा देखी जो आज हमारे इस समाज के लिए अनुकरणीय है अब मैं श्राद्ध और तर्पण का संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूं।

पितृभक्ति श्राद्ध और तर्पण :- श्रद्धा पूर्वक अन्न-जल-फल का तर्पण ही 'श्राद्ध' है। श्राद्ध में अग्नीकरण ब्राह्मण भोजन एवं यथा योग्य दान की क्रिया आवश्यक है। इसके तीन प्रकार यथा एकोदिष्ट पार्वण और नान्दीमुख श्राद्ध है। तर्पण-ब्रह्मादिदेव-पितृगण तर्पण न करने वाले पुत्रों के शरीर का रक्तपान करते है। "अतर्पिताः शरीराद्रुधिरं पिवन्ति। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक सनातनी गृहस्थ को तर्पण अवश्य करना चाहिए। देव तर्पण पूर्वाभिमुख होकर करने का प्रावधान है। ऋषि तर्पण पूर्वाभिमुख होकर मरीचि आदि दस ऋषियों का करें। मनुष्यतर्पण उत्तराभिमुख होकर प्रजापत्य तीर्थ से जलांजलि प्रदान करे। **पितृन् भक्त्या तिलैः कृष्णै-माध्वाचार्य**। यम तर्पण दक्षिणाभिमुख होकर यम से चित्रगुप्त तक चौदह यमदेव को तीन-तीन बार अजंलि देना चाहिए। उसके बाद अपने पितरों का नाम गोत्र उच्चारण कर पितृतीर्थ से जल गिरावै द्वितीय गोत्र तर्पण के क्रम में अपने नाना-नानी-सगे-सम्बन्धी भृत्य-मित्र आदि सम्बन्धियों को भी तर्पण करना चाहिए। कर्म के अन्त में भीष्म तर्पण करें।

मन्त्र - भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः।

अभिरन्दिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रो चितां क्रियाम्।।

अन्त में सूर्याऽर्ध प्रदान करना चाहिए। सभी दिशाओं देवताओं को नमस्कार करते हुए '**ऊँ पितृस्वरूप जनार्दन वासुदेव गया गदाधरदेवः प्रीयतां न मम ऊँ तत्सद्ब्राह्मार्पणमस्तु**' कह कर भगवान की प्रार्थना करें।

ये 'सोमपा' पितर हैं ये धर्मावतार धर्ममूर्ति ब्रह्मा से परे स्वधा से उत्पन्न होकर सृजन सम्बन्धी कार्यों में रत समस्त लोको में विद्यमान हैं। इन्हीं की कृपा से मनुष्यगण सन्तति उत्पन्न करने में सक्षम हैं। पितरों को प्रसन्न रखने तथा पितृभक्ति के लिए श्राद्ध-तर्पण और पिण्डदान आवश्यक है।

निदेशक, धर्मानुष्ठान ज्योतिष विज्ञान केन्द्र, कालीबाड़ी, गया
फोन-0631-2224701, मो०- 9430059111

नहीं बदली परम्परा

श्री सुनील सौरभ

बदलते दुनिया के दौर में बहुत कुछ बदलता जा रहा है। रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा सभी कुछ बदल गया है लोगों का। यहाँ तक कि आधुनिक तथा कम्प्यूटर के इस युग में लोगों के बोल-चाल, संस्कार-संस्कृति में भी बदलाव आ गया है। लेकिन एक ऐसी भी परम्परा है, जो आजतक नहीं बदला। त्रंता युग में भी यह परम्परा उसी रूप में थी और आज भी वह उसी रूप में बरकरार है। यह है गया जी में पूर्वजों (पितरों) की मोक्ष-प्राप्ति के लिए पिण्डदान किये जाने की परम्परा। त्रेता युग में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने जिस विधि से अपने पूज्य पिता राजा दशरथ जी के लिए पिण्डदान किया था, उसी विधि से आज भी लोग अपने पितरों की मोक्ष-प्राप्ति के विधान करते हैं। पिश्चम देशों की आधुनिकता या कम्प्यूटरीकरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आज के वैज्ञानिक युग में इस परम्परा पर लोग तरह-तरह के सवाल भी उठाते हैं। सबसे कॉमन और बड़ा सवाल कथित प्रगतिवादी लोगों का यह होता है कि पितरों की तृप्ति के लिए जो पिण्डदान किया जाता है, क्या वह उन तक पहुँच पाता है ?क्या पिण्डदान से उनकी आत्मा की तृप्ति होती है ? मेरे इस सवाल पर पितृपक्ष में राजस्थान के जयपुर से आये अग्रवाल परिवार के एक सदस्य ने मुझे बताया कि जिस प्रकार आज के कम्प्यूटर युग में लोग संदेश पहुँचाने के लिए फैक्स मशीन का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार पितरों तक संततियों के भाव पहुँचाने की परम्परा है पिण्डदान। जिस तरह फैक्स मशीन से भेजा गया संदेश दूसरे स्थान पर हु बहु निकल जाता है, उसी तरह जिस भाव से हम अपने पितरों की तृप्ति के लिए पिण्डदान करते हैं, वह उन तक पहुँच जाता है। यह तो हुई पिण्डदान के लिए गया जी आने वाले श्रद्धालु की भावना। लेकिन इस संदर्भ में शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ ने एक बार एक सच्ची घटना सुनायी थी।

एक बालक अपने अभिभावक के साथ दिल्ली जा रहा था। मार्ग में ट्रेन में बालक को बड़ी जोरों की भूख लगी। अभिभावक उसे अगले स्टेशन पर कुछ खिलाने का आश्वासन दिये जा रहे थे। इतने में बालक को झपकी आयी और वह सो गया। नींद खुलने पर जब अभिभावक ने उससे कुछ खा लेने को कहा, तो बालक ने बड़ी अन्यमन्यस्कता से निवेदन किया कि अब उसे भूख नहीं है। पूछने पर बालक ने बतलाया कि इसी समय मेरे पूर्वजन्म की संततियों ने तर्पण किया है, जिससे वह तृप्त हो गया। उस बालक के पूर्व जन्म के अपनी संततियों द्वारा किये गये तर्पण का निश्चित स्थान भी बताया। संयोग से वह स्थान उसके यात्रा मार्ग के पास में ही पड़ता था। अभिभावक अपने बालक द्वारा बताये गये स्थान पर पहुँचे, तो उन्हें आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वहाँ पर जल्द ही श्राद्ध एवं तर्पण आदि की क्रियाएं सम्पन्न हुई थीं। इस उदाहरण से पितरों की मोक्ष के लिए किया जाने वाले पिण्डदान पर सवाल उठाने वाले लोगों को अपनी संस्कृति-संस्कार के प्रति भी सम्मान का भाव रखना चाहिए। अन्य धार्मिक स्थलों पर लोग पूजा-पाठ दर्शन के लिए देखा-देखी कर जा सकते हैं। लेकिन गया जी में अपने पितरों की मोक्ष की कामना लेकर पिण्डदान करने के लिए लोग अनुष्ठान के साथ-गया श्राद्ध करने के लिए ही आते हैं।

ब्यूरो प्रमुख, चौथी दुनिया, (साप्ताहिक), नई दिल्ली

आइएगा न, प्लीज!

श्री मुकेश कुमार सिन्हा

आह! आह्लादित है मन, और दिन बाग-बाग। खुद पर इठलाने को दिन चाह रहा है। हो भी क्यो न ?गर्व से अपना मस्तक तो ऊँचा कर ही सकता हूँ। मैं उस धरा पर अवस्थित हूँ, जिसका इतिहास न जाने कितने वे-उपनिषद्, स्मृति ग्रंथों में अंकित है।

'चरणाद्रि समारभ्य गृद्ध कूटान्तकम् शिवे।
तावत् कीकट देश ख्यात्तदन्तर्मगधी भवेत।।'

ऋग्वेद में इस धरा को 'कीकट' के नाम से संबोधित किया गया है, तो अथर्ववेद में 'मगध'। भारत के इतिहास का स्वर्ण-युग मगध की मिट्टी के गुणों का ऋणी है और मैं मगध की उसी गुणकारी मिट्टी पर खड़ा इतिहास बोध करा रहा हूँ। आप जानना चाहते हैं मेरी पहचान, तो मैं **गया संग्रहालय** हूँ। नाम के साथ मगध सांस्कृतिक केन्द्र भी अब जुड़ गया है।

श्री बलदेव प्रसाद, जिसे लोग बाला बाबू भी कहते थे, के योगदान को भला कैसे भूल जाऊँ। मुझे मेरा अस्तित्व कायम कराने के पहले उन्होंने सोसाइटी ऑफ इंडियन कल्चर नाम की संस्था का गठन 23 अप्रैल, 1947 को किया था, और सोसाईटी ने 21 जनवरी 1950 को आयोजित एक बैठक में संग्रहालय स्थापना की मांग का प्रस्ताव पारित किया। पुरातात्विक और ऐतिहासिक महत्व के अवशेषों को सुरक्षित रखने के लिए गठित सोसाइटी के कामों में तब के जिलाधिकारी श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने अपना पूर्ण सहयोग दिया। एक उप-समिति बनीं। बाला बाबू संयुक्त सचिव बने, तो जिलाधिकारी पदेन अध्यक्ष एवं आरक्षी अधीक्षक पदेन सचिव। दस अक्तूबर, 1952 को उपसमिति की पहली बैठक हुई। यह निर्णय लिया गया कि प्रस्तावित म्युजियम का नाम गया म्युजियम हो। साथ ही 16-20 नवम्बर, 1952 तक जवाहर टाउन हॉल में कलाकृतियों की प्रदर्शनी लगाने पर भी सहमति बनीं। तब के वित्त मंत्री श्री अनुग्रह नारायण सिंह ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। बाद में प्रदर्शित सामग्रियाँ गया म्युजियम को दान में दे दी गईं और इस प्रकार मैं अस्तित्व में आया। वैसे, 27 नवम्बर, 1952 की वह ऐतिहासिक दिन भला मैं कैसे भूल सकता हूँ, जिसके पूर्वाहन में नगर पालिका के अध्यक्ष श्री राधा मोहन प्रसाद ने गया संग्रहालय का उद्घाटन किया।

श्री छोटे लाल भइया, कृष्णा लाल बारिक, उमाशंकर भट्टाचार्य उर्फ राजा बाबू, सरस्वती देवी, राय हरि प्रसाद, गोविन्द लाल अग्रवाल, हरि प्रसाद, चमारी साव, राय बहादुर काशी नाथ, राधा मोहन प्रसाद, यदुनंदन अवस्थी, रवीन्द्र नाथ वाजपेयी, डॉ० अब्दुल खैर, झग्गर सिंह, जगत किशोर प्रसाद, नारायण सिंह, भोला नाथ मेहरवार, ठाकुर प्रसाद मिश्रा, दुर्गा पाठक, देव नारायण सिंह, त्रिवेणी शर्मा 'सुधाकर', कृष्ण वल्लभ प्रसाद, राय बागेश्वरी प्रसाद, मुश्ताक अहमद, कैलाश अग्रवाल, बड़कू बाबू, रामेश्वर प्रसाद सिन्हा, आर०पी० श्रीवास्तव, दिलीप कुमार डे., सूरज प्रसाद गुप्ता, विश्वनाथ गुप्ता आदि ने अपने व्यक्तिगत संग्रह की अमूल्यवान वस्तुएं देकर मुझमें चार चांद लगाया।

वर्ष 1970 की 14 फरवरी को मेरा सरकारीकरण हुआ। समय के साथ जब पुरातात्विक अवशेषों का संग्रह बढ़ता गया, तो मुझे मौरियाघाट के मकसूदपुर हाउस में स्थानांतरित किया गया। फिर डाक बंगला होते हुए मैं आज एक भव्य इमारत में सीना ताने खड़ा हूँ। मो० नसीम अख्तर, जो पहला क्यूरेटर थे, के आने के बाद मेरी समृद्धि और बढ़ गयी। गया के विभिन्न स्त्रोतों से पुरातात्विक संग्रहों की जानकारियाँ ली गईं। जनता का सहयोग लिया गया। संग्रह अभियान चलाये गए। जिलाधिकारी जगदीश चन्द्र माथुर, वी.एन.झा. आर एन दास, बीबी लाल, के.एच. सुब्रह्मणियन, पी.पी. शर्मा, महेश प्रसाद, जी.एस. कंग एवं पुलिस अधीक्षक वी.सी. जोशी, नारायण मिश्र के भगीरथ प्रयास ने मुझे रोशन किया। मेरी रंगत में बदलाव आया। मैं अंदर-अंदर खुश होता गया। जिलाधिकारी महेश प्रसाद के वक्त बच्चों के मनोरंजन के लिए डॉल्स हाउस की नींव पड़ी। मुझे याद है, वह दिन, जब पब्लिक लाइब्रेरी में संग्रहित बेशकीमती सामग्रियों को गया संग्रहालय में दान में दी गयी। इस कार्य में तत्कालीन जिलाधिकारी श्री के एच सुब्रह्मणियन की अहम् भूमिका रही।

मैं जब 25 साल का हुआ, तो 120 दिनों तक कार्यक्रम आयोजित हुए। जिलाधिकारी पी.पी. शर्मा की कोशिश से कार्यक्रमों

में प्राण आये। जिलाधिकारी की अध्यक्षता में कमेटी बनीं। केन्द्रीय पर्यटन मंत्री पी कौशिक ने आयोजित कार्यक्रम का उद्घाटन किया। बिहार के पर्यटन मंत्री मोहन राम, पर्यटन निदेशक डॉ० सीता राम राय, सांसद सुखदेव प्रसाद वर्मा, पी.आर.डी. के उपनिदेशक डी.पी. शर्मा सहित अन्य गणमाण्य हस्तियों ने मुझे निहारा। सच पुछिए, मैं अपने अस्तित्व पर इठला रहा था।

राष्ट्रधर्मिता बलदेव बाबू को मैं कोटि-कोटि नमन करता हूँ। वो न रहते तो शायद मैं अस्तित्व में नहीं आता। बलदेव प्रसाद उर्फ बाला बाबू धुन के पक्के थे, जो ठान लिए, वो कर दिखा दिए। कहते हैं कि 1922 में गया में आयोजित कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन को सफल बनाने में बाला बाबू का अविस्मरणीय योगदान रहा। वह कुछ दिनों तक टिकारी-म्युनिसीपेल्टी के अध्यक्ष रहे, तो गया म्युनिसीपेल्टी के तहत वार्ड सदस्य भी। तब के जिलाधिकारी जगदीश चन्द्र माथुर ने गया। इतिहास परिषद् का गठन किया तब बाला बाबू उसके सचिव बने, बाद अध्यक्ष। बाबू देवकी नंदन के पुत्र बाला बाबू के योगदान को भूलना मेरे बूते के बाहर है।

हालिया दिनों में यहाँ के जिलाधिकारी चाहे अमृत लाल मीणा हो या ब्रजेश मेहरोत्रा, चैतन्य प्रसाद हो या संदीप पौण्डरीक, जीतेन्द्र श्रीवास्तव, संजय कुमार सिंह या फिर बंदना प्रेयसी। सबका योगदान मैं थोड़े ही भूलने वाला हूँ। बाला मुरूगण 'डी' साहेब का भी शुक्रगुजार हूँ।

मैं धन्य हूँ। मैं अवलोकनीय हूँ। मेरे प्रांगण में छठी-12 शताब्दी की प्रस्तर प्रतिमाएं हैं। विष्णु दशावतार, भैरव, दुर्गा, चामुण्डा, सरस्वती और नृत्य मुद्रा में शिव और गणेश की प्रतिमाएं हैं, जो बरबस लोगों को अपनी ओर खींच रही है। मैत्रेय, तारा, अपराजिता, अवलोकितेश्वर, बुद्ध की भी प्रस्तर प्रतिमाएं हैं।

नौवीं-12 वीं शताब्दी की कांस्य प्रतिमाएं का तो कहना नहीं। 16वीं-19 वीं शताब्दी की हस्त लिखित श्रीमद् भागवद् गीता, स्कंद पुराण मेघदूत, दुगा सप्तशती, रामचरित मानस, आइन-ए-अकबरी, खमस-ए-शेख निजामी संग्रहित है, तो कटार, भाला, तलवार तथा चमड़े का ढाल भी लोगों के लिए अवलोकनीय। वैशाली तथा कुम्हरार की खुदाई से प्राप्त मानव एवं पशुओं की लघु मृण्मूर्तियां है। कुषाण, गुप्त, दिल्ली सल्तनत, मुगल, अवध, ब्रिटिश एवं देशी राजाओं से संबंधित छठी शताब्दी ईसा पूर्व से 20वीं शताब्दी तक की सोना, चांदी और तांबा के सिक्के हैं। बिहार में प्राप्त खनिज तथा चट्टानों के नमूने संग्रहित हैं, तो स्थानीय औद्योगिक कलात्मक वस्तुएं भी संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहीं है। पुरातात्विक अवशेष और उत्खनन में प्राप्त पुरावशेष इतिहासबोध करा रहा है। मेरे प्रांगण में संग्रहित सामग्रियां ऐसी है कि लोग बरबस निगाहें जमा देते हैं। पर्यटकों और स्थानीय दर्शकों से मैं गुलजार हूँ। फिर भी मुझे आपके आने का इंतजार है। आप भी आइएगा, न प्लीज मैं आपका इंतजार करूंगा, फिर आपको यह एहसास हो जाएगा कि मेरी खुशी का राज क्या है। अपने इतिहास से रूबरू होने, आप आ रहे हैं न!

भविष्य निधि विभाग, पुराना सचिवालय, पटना

मानवीय मूल्यों को अपनायें

गणेश प्रसाद

देश में मानवीय मूल्यों और कर्त्तव्य का ह्रास हो रहा है। साधारण लोगों में विश्वास खत्म हो रहा है। कई लोग सिर्फ अधिकार की बात करते हैं। अपने कर्त्तव्य की बात नहीं।मानो अधिकार के सामने कर्त्तव्य बौना साबित हो रहा है। जबकि अधिकार के साथ-साथ कर्त्तव्य का बोध होना चाहिए।

चाहे राजनेता हो या क्षेत्रीय नेता, चाहे प्रधानमंत्री हों या मुख्यमंत्री, चाहे केन्द्रीय मंत्री हो या क्षेत्रीय मंत्री हो, चाहे आई.पी.एस. हो या आई.ए.एस., चाहे क्षेत्रीय पदाधिकारी हो या क्षेत्र की जनता। चाहे सांसद विधायक हो या जिला-वार्ड पार्षद हो, चाहे अमीर हो या गरीब। चाहे न्यायकर्त्ता हो या फरियादी। चाहे सरकारी संगठन हो या गैरसरकारी संगठन हो। चाहे न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं विधायिका के सदस्य हों या चौथा स्तंभ।

सभी एक-दूसरे के पूरक हैं लेकिन एक-दूसरे में समन्वय नहीं है। यही वजह है कि मानवीय मूल्यों का दिन पर दिन गिरावट हो रहा है। एक-दूसरे पर विश्वास खत्म हो रहा है। एक-दूसरे को शक की नजर से देख रहे हैं। वजह चाहे जो हो लेकिन एक बात सत्य है कि लोग स्वार्थ में डूब गये हैं। स्वार्थ के आगे सहयोग की भावना खत्म कर रहे हैं।

सड़क से लेकर संसद तक जिसको जहाँ मिलता वहाँ लोग स्वार्थ में डूब जाते हैं। स्वार्थ के आगे कर्त्तव्य भूल जाते हैं। जब तक कुर्सी या अधिकार रहता है तब तक उन्हें किसी का फिक्र नहीं रहता है। कुर्सी अधिकार जाने के बाद उन लोगों का कर्त्तव्य के साथ-साथ बड़ी-बड़ी वैचारिक संदेश देते हैं। लोगों में यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि पर उपदेश कुशल बहुतेरे वाली कहावत चरितार्थ होती है। एक दूसरे के बीच विश्वास खत्म होता है और असंतोष पैदा होता है। देश के सभी स्तम्भ खोखला हो गया है। अंदर कुछ और बाहर कुछ। शोषण जारी रहता है। लोग सहनशील हो जाते हैं। दूसरे की व्यिथा दूर करने की बात करते हैं पर अपनी समस्याएं रखने में हिचकिचाते नहीं हैं। झूठी शान के आगे ठग की दुकान शुरू होती है, जो ज्यादा ठगेगा वही समाज में प्रशंसक होगा। यही वजह है कि भ्रष्टाचार चरम् सीमा पर पहुँचा है। योजनाएं लूट का गढ़ बनी है। फिर भी जनता की समस्याएं खत्म होने के बजाय दिन-प्रतिदिन नयी-नयी समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। मानो समस्याएं हल के बजाय पैदा होती है। जो अमीर है वह अमीर हो रह है, जो गरीब है वह और गरीब हो रहा है। अमीर को छूट मिल रहा है। गरीब के नाम पर लूट हो रहा है। बेचारे मध्यवर्ग दोनों तरफ से भार झेल रहा है। मध्य वर्ग को झूठी शान में जीने की आदत हो गयी और झूठी शान के आगे अपनी समस्या रखने में विवश हो गये हैं। मानवीय मूल्यों की चिंता किसी को नहीं है। जब तक हम स्वार्थ से ऊपर नहीं उठेंगे। हम में मानवीय मूल्यों को ग्रहण करने की प्रेरणा नहीं आयेगी। आज आवश्यकता है, हम मानवीय मूल्यों को पहचानें और उसे ग्रहण करें।

अधिवक्ता, गया

❖❖❖

BIHAR TOURISM

Government Of Bihar

Department of Tourism

Experience the Soulful

Special Packages
Rs. 5310 per pax onwards#

Pitripaksha 2013

18th September- 4th October

Pitripaksha Tour Package

Gaya-Bodhgaya-Gaya (Same Day)
Gaya-Bodhgaya-Gaya (Nightstay)
Gaya-Bodhgaya-Rajgir-Nalanda-Gaya (1N/2D)
Patna-(Punpun)-Gaya-Bodhgaya-Patna (Same Day)
Patna-(Punpun)-Gaya-Bodhgaya-Rajgir-Nalanda-Patna (1N/2D)

BSTDC also conducts Sandhya Aarti during Pitripaksha at the banks of Falgu river

Package Includes

Pind-daan(Akshyawat, Phalgu, Vishnupad)
Arrangement of Panda with Puja Samagri
AC rooms Pick and Drop Local Sightseeing
Breakfast and Lunch included

#terms and conditions applied

Pitripaksha "fortnight of the ancestors" when Hindus pay homage to their ancestors (Pitrs), especially through food offerings if performed in Gaya according to legends and Hindu beliefs is considered most fruitful. At this sacred land where Lord Ram performed these holy rites in remembrance of his father king Dasarath,
you just have to bring yourself here and we bring everything else to you,

For Bookings and More Information
Log on to our website www.bstdc.bih.nic.in
For more details contact our Pitripaksha Nodal Officers
+91 9708066612
+91 8797922613

आतिथ्य दिल से

www.twitter.com/bihar_tourism www.facebook.com/13bihar.tourism

brought to you by Bihar State Tourism Development Corporation Limited

For more information you may also log on to
www.pinddaangaya.com

स्वास्थ्य विभाग, बिहार सरकार

श्री नीतीश कुमार
माननीय मुख्यमंत्री, बिहार

दस का दम-
स्वस्थ रहेंगे हम

नागरिक समाज एवं बिहार सरकार की संयुक्त पहल-
बीमारियों से बचाव की रणनीति

1. लड़कियों की शिक्षा कम-से-कम 12वीं तक एवं शादी 18 के बाद ही।
2. गर्भावस्था के दौरान एवं प्रसव के बाद स्वास्थ्यकर्मी द्वारा समुचित जाँच।
3. जन्म के एक घंटे के अन्दर स्तनपान की शुरूआत और छः महीने तक सिर्फ माँ का दूध, ऊपरी खाना छः महीने के बाद।
4. बच्चों का सम्पूर्ण टीकाकरण समय पर बिना चूके।
5. बेटी-बेटा एक समान/बच्चे दो ही अच्छे/बच्चों के बीच तीन साल का अन्तर।
6. बच्चों के दस्त के इलाज के लिए ओ.आर.एस. और जिंक का प्रयोग।
7. कमजोरी एवं खून की कमी से बचने के लिए हरी साग-सब्जियाँ, फल और देशी आहार।
8. खाने और खिलाने के पहले एवं शौच के बाद साबुन या ताजा राख से हाथ धोना।
9. पीने के लिए स्वच्छ पानी, शौच सिर्फ शौचालय में एवं कूड़े-कचरे का सही जगह पर निपटान, मच्छरों से बचाव।
10. नियमित योग व्यायाम, स्वास्थ्य परीक्षण एवं नशा से परहेज।

बच्चे दो ही अच्छे

राज्य स्वास्थ्य समिति, बिहार